अप्रैल 2015 वार्षिक मूल्य ₹ 150

साधन

संस्थापक : समर्थ गुरु परम संत डा. चतुर्भुज सहाय जी

ॐ

रामाश्रम सत्संग, मथुरा

ॐ

साधन

अप्रैल-2015

अनुक्रमणिका

ॐ

साधन

वेद-मंत्र

मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परावृणक्।।

— सामवेद

हे इन्द्र ! (हे परमात्मन्) हमें दूर मत कर, हमारे यज्ञ में आ। हे भगवन् तू हमारा रक्षक है, तू ही हमारा भाई है। हे प्रभु ! हमें दूर मत कर।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः!!!

वर्ष : 82 अंक : 9	अप्रैल-2015	वार्षिक मूल्य : ₹ 150.00 इस अंक का : ₹ 16.00

-: आरत पुकार :-

जाऊँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे।
काको नाम पतित पावन जग, केहि अति दीन पियारे।।
कौने देव बराइ विरद-हित, हठि-हठि अधम उधारे।
खग मृग व्याध, पाषान बिटपजड़, जवन कवन सुरतारे।।
देव दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया बिबस बिचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपन पौ हारे।।

— संत श्री तुलसीदास

अमृत बिन्दु

क्या बनना होगा

— समर्थ गुरु परम सन्त श्री डा. चतुर्भुज सहाय जी

ईश्वर के प्यारे बनने के लिए और संसार सागर से पार होने के लिए हमको क्या बनना होगा ? जब हम इस पर विचार करते हैं तो उत्तर में महापुरुषों द्वारा कथन की हुई तीन बातें हमारे सम्मुख आती हैं- (1) इन्द्रिय-निग्रह, (2) मन-निग्रह और (3) बुद्धि निग्रह । बिना इन कामों के हमारा उद्धार नहीं हो सकता, हम असल तत्व को नहीं प्राप्त कर सकते । हमारा व्यवहार भी इन्हीं तीन के द्वारा होता है और परमार्थ भी।

तीन उपाय

इन तीनों को नियंत्रण में लाने के लिए तीन उपाय अलग-अलग हैं, जिनको शास्त्रों की भाषा में 'कर्म', 'उपासना' और 'ज्ञान' कहते हैं । कर्म इन्द्रियों को शुद्ध करता है, उपासना मन की उथल-पुथल बंद करके उसे आत्मा के समीप पहुँचाती है और ज्ञान के साधन से बुद्धि में फुरना होती है, विवेक शक्ति और विचार शक्ति तीव्र बनती है, जिनके सहारे हम साक्षात्कार करते हैं । उसी विवेक दृष्टि से तत्वों का सूक्ष्म और महासूक्ष्म रूप हमको दिखाई देने लगता है, उस समय हम अपने को और अपने से बाहिर संसार को समझ पाते हैं और यही ज्ञान हमको मोक्ष धाम में ले जाता है और अमरत्व को प्राप्त कराता है ।

गीता के अठारह अध्यायों में इन्हीं तीन का वर्णन है । उपनिषद के गूढ़ रहस्य इन्हीं तीन की व्याख्या करते हुए समाप्त हो जाते हैं । षट दर्शन, कर्म उपासना और ज्ञान के साधनों को बताते हुए अपने को तीन भागों में विभाजित कर डालते हैं। वेदों की त्रै विद्या इन्हीं तीन से सम्बन्ध रखती है । संत और सूफियों की वाणी इन्हीं तीन पर कथन हुई है । तात्पर्य यह है कि जिसने इनको सम्भाल पाया वही मनुष्य है और जो जीवन में इन तीनों पर अधिकार नहीं प्राप्त कर सका वह नरतन रखता हुआ भी पशुओं की गणना में आ जाता है।

लाभ

कर्म से इन्द्रियां शुद्ध होती हैं, मन और प्राण में बल आता है और मनुष्य सदाचार की ओर अपने को झुका पाता है । प्रत्येक इन्द्रिय के अलग-अलग कर्म प्रकृति माता ने नियमबद्ध कर दिये हैं, उनमें अच्छे भी हैं और बुरे भी हैं । हमको उचित है कि हम बुरे कर्मों को त्यागते जायँ और शुभ कर्मों में अपनी प्रवृत्ति बढ़ाते जायँ । हमेशा इस ओर दृष्टि रखें, कि हमारा कदम बुराई की तरफ तो नहीं जा रहा है ? हमारी कोई इन्द्रिय हमसे उस काम को तो नहीं कराना चाहती कि जिनके लिए शास्त्रों ने निषेध किया है ? यदि ऐसा प्रतीत हो तो वहीं उसको रोकने का प्रयत्न करना चाहिए और उसे बलपूर्वक उधर से हटाना

चाहिए । सम्भव है कि किसी-किसी समय हम अपने उस उद्देश्य में सफल न हो सकें, उद्योग करने पर भी अपने को इस कठिनाई से बचा न सकें पर निरन्तर कोशिश का नतीजा हो सकता है कि जिस प्रकार धीरे-धीरे बुराइयों में फँसते हुए हम बुरे बने हैं, उसी तरह अच्छाई के अभ्यास से हम अच्छे बन जायेंगे और आगे चल के ये ही हमारी आदत हो जायगी ।

यम-नियम

आदत का बनाना बिगाड़ना मनुष्य के सामर्थ्य में है । मत डरो कि जो आदत हमारी पड़ी हुई है वह हमसे नहीं छूट सकती, ऐसी बात कायर और साहसहीन कहा करते हैं । हिम्मत वाले अपनी आदतों की परवाह नहीं करते, वह आदतों के गुलाम नहीं होते बल्कि जब चाहते हैं तब एक आदत को छोड़ देते हैं और उसकी जगह दूसरी आदत को ले लेते हैं । उलझनें आती हैं, मन चलायमान होता है, कभी-कभी धोखा भी दे जाता है पर जो दृढ़ प्रतिज्ञा करने वाले हैं वह विचलित नहीं होते और एक दिन सफलता की चोटी पर अपने को पहुँचा के पीछा छोड़ते हैं । इसी कर्म का नाम महर्षि पतन्जलि ने यम और निमय रक्खा है ।

योग विद्या के आठ सोपान हैं कि जिनका नाम 'अष्टांग' योग है, दर्शन के लिए या साक्षात्कार के लिए इन आठों अंगों का पालन करना पड़ता है। साधक किसी धर्म को मानने वाला हो, किसी सम्प्रदाय का वह सदस्य हो, यदि उसे आत्मा और परमात्मा तक पहुँचना है, यदि उसे अपना और ईश्वर का रूप देखना है तो इन आठ बातों पर चलना उसके लिए लाजिमी है । किसी एक में ढीलापन या त्रुटि होने पर वह कभी पूर्ण नहीं हो सकेगा, वह उस धाम की सैर कभी नहीं कर सकेगा जहाँ पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनंद है और पूर्ण शान्ति है । जीवात्मा का वही असली देश था, अपनी अज्ञानता वा मूर्खता से वह वहाँ से बहक गया, भाग खड़ा हुआ और दूर जा पड़ा कि जिसके परिणाम में उसे दुःख और अशान्ति मिली। कष्ट झेलता है, परेशान रहता है, विपत्ति उठाता है, दुनियाँ की मुसीबतें झकझोले डालती हैं पर आदतों का मारा हुआ अब भी वही किये जा रहा है कि जिसमें बन्धन और मजबूत होंगे, मुश्कें बंधेगी और मार पड़ेगी ।

रोने चिल्लाने से कुछ नहीं होता, निकम्मे की कौन सहायता करता है, उपाय करो, साहसी बन के मैदान में आओ और आसुरी वृत्तियों को एवं आसुरी कर्मों का मटिया मेट कर डालो, उन्हें अपने से इतना दूर भगाओ कि कोई यह जान भी न सके कि किसी काल में यह तुम्हारे भी समीप थे, उसी समय दैवी शक्तियाँ तुम्हें गोद में उठा लेंगी, और प्रभु के आनन्द मन्दिर में ले आके बिठा देंगी, फिर न कोई दुःख रहेगा, न क्लेश तुम कृत-कृत्य हो जाओगे ।

इन आठ प्रकार के साधनों में यम और नियम पहले साधन हैं । यह वर्ण माला के अक्षरों में से 'अ-ई' अक्षर हैं, जिस विद्यार्थी ने 'अ' और 'ई' नहीं सीख पाई उसे कोई कह सकता है कि आगे की विद्या आ जायगी और वह पुस्तकों को पढ़

लिख सकेगा ? हरगिज नहीं । ऐसे ही योग विद्या के यम और नियम हैं । यम त्यागने का नाम है और नियम ग्रहण करने का नाम है । बुरी बातें छोड़ो, बुरी बातों का त्याग करते चलो, बुरे संकल्प मन में मत उठने दो, यह 'यम' है । इसी प्रकार अच्छी बातें करो, जिन कामों से अपने व दूसरे सब सुखी हों वह कर्म करो तथा जो संकल्प हृदय को शुद्ध बनावें, उसमें प्रसन्नता भरें, उनको लाना यह सब कुछ 'नियम' हैं । बस, इतना ही कर सकने पर यम और नियम सिद्ध हो जाते हैं और मुमुक्षु आगे बढ़ जाता है । जिसने यह दोनों सीढ़ियाँ नहीं चढ़ पाईं, वह आगे कैसे चल सकेगा इसमें सन्देह ही नहीं बल्कि असम्भव है ।

महर्षि ने संक्षेप में सूत्र रूप से "अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यमः, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान नियमाः" इन दोनों की व्याख्या की है पर हम तुमको झमेले में नहीं डालना चाहते । खुलासा बतलाये देते हैं कि बुरे स्वभाव को बदल के अच्छा बना लेना ही यम और नियम है और इतना ही इस सबका तात्पर्य है ।

क्रिया

एकदम आगे मत बढ़ो, इतना बोझ एक साथ सिर पर न लादो कि दब मरो, धीरे-धीरे कदम बढ़ाओ, थोड़ा-थोड़ा सुधार करते चलो । प्रथम यह देखो कि तुम्हारे अन्दर कितनी ऐसी बातें हैं कि जिन्हें तुम्हें छोड़ना है । उन्हें दिल में नोट कर लो । अब उनमें से एक बात जो तुम्हें सबसे सरल और आसान जान पड़े उसकी ओर झुको, उसको बदलने की कोशिश करो और सारी ताकत उसमें लगा दो, यहाँ तक कि सफलता प्राप्त करके ही पीछा छोड़ो । जब एक ठीक हो जाये तब दूसरी लो । इसी तरह आगे बढ़ते चलो, यही इसका नियम है ।

इम्तहान के वक्त जो लड़का एक सवाल को हाथ में लेता है और जो उसकी दृष्टि में सहज दिखाई देता है उसे ही हल करने की कोशिश करता है फिर उसके पश्चात् दूसरे को हाथ लगाता है, वही पास होता है और ऐसा लड़का जो सारे प्रश्नों को एक साथ ही लिखने की चेष्टा करता है वह असफल ही रहता है । ऐसा ही इसके लिए भी समझो ।

सत्य और अहिंसा

मान लो कि तुम्हें असत् का त्याग करना और सत्य का स्वभाव बनाना है तो प्रथम अपने दिल में ऐसा प्रण करो कि आज से असत् व्यवहार हम नहीं करेंगे और न झूठी बात बोलेंगे । उस तारीख को अपनी नोट बुक में लिख लो और कोशिश करो कि तुमसे अपना प्रण ठीक-ठीक निभ सके । ऐसा करते हुए भी तुमको झमेले आवेंगे, मन अपने स्वभावानुकूल तुमको झूठ बोलने और झूठे कार्य करने के लिए प्रेरित करेगा पर तुम अपनी प्रतिज्ञा की ओर ध्यान रक्खो, मन के धोखे में अपने को मत आने दो । परन्तु फिर भी कोई समय आ सकता है कि अचानक झूठ मुख से निकल जायगी । जिस समय ऐसी गलती हो उसे अपने नोट बुक में दर्ज कर लो और उस पर पश्चाताप करो । अपने लिए कोई दण्ड दो,

उपवास करो, मौन रहो अथवा दूसरा कोई परिश्रम उठावो कि जिससे शरीर और मन दोनों थकित हो उठें । ऐसा करते-करते मन अधिकार में आ जायगा और अपना स्वभाव त्याग देगा । दुबारा गलती होने पर और कठिन दण्ड दो, ईश्वर से विनय करो कि वह शक्ति दें । इसी तरह प्रत्येक अवगुण को त्यागते चलो, और उसकी जगह सद्गुण लेते चलो, यही इसका नियम है ।

कई आदमी सद्गुणों को पाकर अहंकारी बन जाते हैं । यह दूसरों से अपने को ऊँचा समझते हैं और अपनी सचाई के घमण्ड में दूसरों से ऐसे कठोर बचन बोलने लगते हैं कि जिससे उनका दिल दुःख जाता है, इसका नाम भी हिंसा है । जिन कामों से दूसरे क्षुभित हो उठें, अपने हृदय में दुःख अनुभव करें वही हिंसा है । सत्यता के पकड़ने वालों को इन से बच के चलने की जरूरत है, नहीं तो हिंसा रूपी सिंह उनकी गरदन पर सवार हो जायगा । वेद कहते हैं- ''सत्यं ब्रूयात, प्रियं ब्रूयात'' सच बोलो पर मीठा बोलो ताकि तुम्हारे व्यवहार से कोई दुःखी न हो ।

अस्तेय और ब्रह्मचर्यः- सत्य और अहिंसा की वृत्ति रखने वाला न तो चोरी कर सकता है, न व्यभिचार में फँस सकता है, क्योंकि उसे अपने से ही डर लगता है । ऐसा मनुष्य समय आने पर अपना भंडा फोड़ सकता है, वह अपने गुप्त रहस्य दूसरों को बता सकता है । इसलिए इन दोनों के साथ अस्तेय और ब्रह्मचर्य का घना सम्बन्ध है । सत् और अहिंसा का पालन करने वाला इन्हें सहज ही में प्राप्त कर सकता है उसे अधिक कठिनाई में नहीं जाना होगा ।

काम और क्रोधः- यह दोनों बड़े जबरदस्त महारथी हैं, आसुरी सेना के हाई कमांड आफिसर हैं । जिस समय इनसे मुकाबिला होता है और जिस समय यह अपना प्रहार करते हैं तो बड़े-बड़े धीर महापुरुष भी विचलित हो उठते हैं और एकदम मूर्छित हो अपने कर्त्तव्य को खो बैठते हैं । गीता इनकी प्रशंसा में लिखती हैः-

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ।।

(अध्याय 3 श्लोक 37)

भगवान ने कहा मनुष्य के बड़े भारी शत्रु, बड़े पेट वाले रजोगुण से उत्पन्न ''काम और क्रोध'' हैं । ये उसे पाप कर्मों में फँसाते और उधर को ले जाते हैं इसलिए हे अर्जुन । जो इन पर विजय प्राप्त कर पाते हैं, उन्हीं का कल्याण होता है। ✦✦

अमृत वचन

- **आत्मा का ज्ञान हृदय को ही दिया जाता है । इसमें न तो हाथ काम देते हैं, न वाणी। इसका माध्यम एक प्रकाश होता है ।**
- **जिसके दिल में दूसरों के लिए तरस नहीं होता वह सुन्दर मनुष्य नहीं माने जाते । इसलिए अपनी कठोरता त्यागो तब सबके लिए प्रेम पैदा हो जायेगा ।**

—परम भागवत परम संत पंडित मिहीलाल जी

सम्पादकीय

साधना-गुरु के सम्मुख बैठ जाना है

गुरु महाराज द्वारा प्रदत्त साधना क्या आज के युग में भी उतनी उपयोगी है जितनी उनके काल में थी ? गुरु महाराज का अवतरण सन् 1883 में हुआ था । तब की अवस्था आज की अवस्था में बहुत अन्तर आ गया है । उस समय देशवासी बहुत सरल, सहज थे । कोई बनावट नहीं थी, भीतर बाहर एक जैसे थे । समाज में आपस में प्रेम था, न चोरी थी, न अपहरण । अत्यधिक गरीबी में भी पूर्ण ईमानदारी । देश परतंत्र था । आज परिस्थितियाँ बदल गईं हैं । समाज में वह सहजता और सरलता नहीं रही, ईमानदारी नहीं रही । वह प्रेम नहीं रहा । प्रश्न आता है कि क्या आज भी गुरु महाराज द्वारा प्रदत्त साधना से हमें अपने लक्ष्य की प्राप्ति होगी ? हाँ, यह साधना उतनी ही उपयोगी है जितनी आज से 100 साल पहले थी । एक कुशल कहानीकार अपने लेख या कहानी में रोचकता बना के रखता है ताकि उसकी कहानी को लोग पढ़ें उसी तरह गुरु महाराज ने अपनी साधना को आकर्षक और रोचक (attractive and interesting) बनाया । उन्होंने यह विचार किया कि साधना साधक को उस अवस्था में ले जाए जहाँ साधक स्वयं ही देखे उसमें क्या परिवर्तन हो रहा है । वह स्वयं अनुभव करे उस चेतना, शान्ति और आनन्द को जिसके बारे में शास्त्रों में लिखा गया है । इसकी झलक उन्होंने पहली बैठक में ही साधक को दिखा दी । नया साधक पहली ही बैठक से एक अलौकिक शान्ति अनुभव करता है । गुरु महाराज ने उसको वह आत्मिक शान्ति का स्वाद चखा दिखा जो उसका गुण है । वह मंजिल दिखाई जिसको प्राप्त करना है । उस स्वाद को चखने से साधक के मन में एक ललक, एक जिज्ञासा पैदा हो गई कि उस अवस्था को स्थाई रूप में कैसे प्राप्त करें । गुरु महाराज ने उसे वह कमियाँ भी दिखाईं जो उसके लक्ष्य प्राप्ति में बाधक होंगी । उसने देखा उसके मन, बुद्धि और अहम् में विकार हैं । जैसे हेलीकॉप्टर से किसी आदमी को पहाड़ की चोटी पर बिठा दिया जाए और कह दिया जाए कि अच्छी तरह देख लो यहाँ तक आने के लिये पैदल का रास्ता कैसा है । उसने देखा बहुत से रास्ते हैं । कुछ बहुत खराब, भरपूर बाधायें पर एक साफ सुथरा आसान । साधक को अनुभव हुआ कि समस्या उसके मन की है । संसार में रमा हुआ है । उसके बुद्धि में अज्ञान भरा है । अहम् में 'मैं-मेरा तू-तेरा' है । अपनी समस्यायें देख लीं । लेकिन चले कैसे ? गुरु महाराज ने कहा

कि चिन्ता न करो । तुमको उस अवस्था में ले जाना मेरा काम है । उन्होंने कहा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा ध्यान, समाधि यह सब तुम्हें कुछ नहीं करना है । तुम केवल मेरे सामने बैठ जाओ । उस परम शान्ति और आनन्द धाम तक पहुँचाने का काम मेरा है । मैं तुम्हें ले चलूंगा मन से, बुद्धि से एवं अहम् से । मैं ही तुम्हारे मन, बुद्धि अहम् के विकारों को दूर करूंगा। मैं ही तुम्हारे अन्दर श्रद्धा और विश्वास लाऊँगा। गीता में हम देखते हैं कि अर्जुन भगवान कृष्ण से कहता है '**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**' । वह कहता तो है कि मैं आपका शिष्य हूँ और आप मुझे उपदेश करें कि मैं क्या करूँ लेकिन श्रद्धा नहीं है । मन में विचार है कि कृष्ण उनके सखा हैं गुरु कैसे हो सकते हैं ? भगवान कृष्ण अर्जुन के मन की अवस्था जानते हैं कि यह मेरी बात सुनेगा नहीं । जब तक अध्यापक का डर नहीं होगा विद्यार्थी पढ़ता नहीं । भगवान कृष्ण ने भय पैदा करने के लिये अर्जुन को विराट स्वरूप दिखा के प्रत्यक्ष अनुभव कराया कि वह ईश्वर भी हैं । ऐसे ही गुरु महाराज ने अपना स्वरूप दिखलाया कि देख मैं कौन हूँ । साधक ने अपने मन में देखा और अनुभव किया कि जो मन शान्त नहीं होता था आज शान्त है । साधना करते हुये धीरे-धीरे गुरु के प्रति श्रद्धा का अनुभव हुआ । धीरे-धीरे साधना से विश्वास हुआ कि वास्तव में उसके गुरु पूर्ण हैं । जितना गुरु ने अपने को खोला उतना ही साधक अवाक होके गुरु को देखता गया। मन और बुद्धि जैसे-जैसे निर्मल होते गये उसका श्रद्धा और विश्वास बढ़ता गया। जितना गुरु खोलता गया उतना समझता गया और रास्ता पार हो गया । जैसे एक नाला एक नदी, एक गंदा एक साफ । नाला जुड़ता है नदी से । नदी उस गंदे पानी को अपने में मिलाती है, धोती है साफ करके अपने साथ बहाती है। ऐसे ही गुरु निर्मल धारा है । हम गंदे नाले हैं । अगर नदी नाले से कहे तुम बहुत गंदे हो साफ होकर आओ तब जुड़ना मुझसे तो नाला कभी साफ नहीं हो सकता। नदी नाले को खुद ही जोड़ लेती है और अपना काम करने लगती है । ऐसे ही अगर गुरु कहे पहले मेरे ऊपर श्रद्धा पैदा करो और विश्वास करो तभी मैं जोड़ूँगा अपने से तो शिष्य का कल्याण नहीं हो सकता । हमारे गुरु महाराज ने यह नहीं देखा कि कौन पात्र है या कौन अपात्र है। कितने पाप किए हैं, कितने गलत काम किए । केवल यह कहा मेरे सामने बैठ जाओ । जहाँ हम बैठ गये वहीं गुरु महाराज का काम शुरू हो जाता है । उन्होंने हमारे मन, बुद्धि एवं अहम् में प्रवेश किया और उस पर कब्जा जमा लिया । महाभारत में भगवान कृष्ण ने जब देखा कि इतना ज्ञान देने के बाद भी अर्जुन का मोह दूर नहीं हुआ तो उनको कहना पड़ा '**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु**' तू मेरे मन वाला हो जा । लेकिन हमारे गुरु महाराज ने यह नहीं कहा कि मेरे मन, बुद्धि अहम् से जुड़ जाओ । उन्होंने केवल यह कहा मेरे सामने बैठ जाओ । तुमको अपने मन बुद्धि को अर्पण नहीं करना है । अर्पण कराने का कार्य मेरा है । न धारणा करना, न ध्यान और न समाधि में

जाना है । मन में बसा संसार त्याग करना इतना आसान नहीं है । 'मैं मेरा तू तेरा' इतना प्रिय है हमें कि छूटता नहीं है । गुरु महाराज ने कहा मैं जोड़ूँगा तुम्हें । मैं तुममें भरूंगा । गुरु का एक अर्थ है भारी । जब गुरु मेरे मन में भरता है तो जो विकार थे निकलना शुरू हो जाते हैं । जैसे एक घड़े में पानी भरा हुआ है तो पत्थर डालते जाऐं तो पानी ऊपर आ कर बाहर निकल जाता है । ऐसे ही जब गुरु का आगमन मेरे मन में हुआ तो विकार निकलना शुरू हो गया । मेरे मन में निर्मलता आ गई । बुद्धि में जो असत्य भरा था निकल गया । अब वास्तविक ज्ञान उसमें भरता है । ज्ञान एक दृष्टि देता है । संसार और गुरु का ज्ञान होता है । अब तक मैंने पढ़ा था, सुना था संसार के बारे में। अब प्राप्त दृष्टि से देख रहा हूँ संसार क्या है । मेरे मन पर कई चश्में हैं- काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के। जैसा चश्मा लगा लिया वैसा ही संसार दिखता है। जैसे-जैसे गुरु से जुड़ते जाते हैं चश्में का रंग बदलता है । एक क्षण वह आता है जब सारे चश्में उतर जाते हैं, मन निर्मल हो जाता है । जुड़ गया तो पूर्ण शान्ति में चला गया । न मैं रहा न संसार रहा । केवल गुरु रह गया मेरे सामने । जिधर देखता हूँ मेरे गुरु ही दिखलाई देते हैं । परम पूज्य पंडितजी महाराज कहते थे भण्डारा गुरु का विराट स्वरूप है । गुरु ही आए हैं । चेहरे बदले हुये हैं। ऐसे ही साधक उस अवस्था में चला जाता है तो देखता है सबमें मेरा गुरु मेरा परमात्मा ही है । ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित जगत्यां जगत । यह प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है कि संसार में केवल ईश्वर ही ईश्वर है और कुछ नहीं है । अब मेरे अन्दर प्रेम भर गया । देखता हूँ सर्वत्र मेरा गुरु ही है । अब सबसे प्रेम करता हूँ। न राग, न द्वेष, न घृणा सब के लिये प्रेम । परम पूज्य पंडितजी महाराज बहुत सुन्दर बात कहते थे दो अवस्थायें आती हैं। जितना ही प्रेम भरता जाता है उतने ही आँखों में आँसू आते जाते हैं । परम पूज्य कहते थे कि जैसे लड़की मायके से विदा होती है रोती है और जब लौट के माँ के पास आती है तब भी रोती है कारण? एक जगह बिदाई का दु:ख और दूसरी ओर मिलन का सुख। पहले जो आँसू थे वह दु:ख के थे बिदाई के थे । लेकिन लौटने के आँसू मिलन सुख के हैं। आनन्द के आँसू हैं । भक्त की आँखों में ऐसा ही आँसू पूर्ण से मिलने का आनन्द है । वह उस आनन्द में हर समय निमग्न रहता है और आँसू बहते रहते हैं । गुरु वहाँ पहुँचा देता जहाँ भक्ति मिल जाती है । केवल योग कराना गुरु का काम नहीं है । गुरु पूर्ण करना चाहता है । गुरु चाहता है जहाँ से आए हैं वहाँ तक पहुँचा दें । परमात्मा से जोड़ दें । ईश्वर की कोई परिभाषा नहीं है । आप स्वयं ईश्वर हो जाएगें । ईश्वर दर्शन की इच्छा नहीं रह जाएगी, सन्तुष्टि होगी । किसी ने परम पूज्य पंडितजी महाराज से पूछा कि क्या आपने ईश्वर दर्शन किया है ? उन्होंने कहा कि मैं यह तो नहीं कह सकता कि ईश्वर दर्शन हुआ है कि नहीं लेकिन अब इच्छा नहीं रही । कारण ? पूर्ण सन्तुष्टि । ईश्वर को खुली आँख से हर पल देख रहा हूँ सब में । एक बार और किसी के प्रश्न 'ईश्वर दर्शन किया या

नहीं' पर उन्होंने बहुत सुन्दर उत्तर दिया था । उन्होंने कहा ईश्वर कोई छिपी चीज नहीं है। मैं कहता हूँ तुम भी देख रहे हो और मैं भी देख रहा हूँ । दोनों के देखने में बस फर्क है । मैं जानता हूँ ईश्वर है, तुम देखते हो यह व्यक्ति है । दृष्टि का भेद है । मेरी दृष्टि बदल गई है । गोपियाँ बहुत सुन्दर बात कहती हैं । **जित् देखूँ तित् श्याम मयी हैं** । जिधर निगाह जाती है श्याम ही नजर आता है । बहुत सुन्दर बात है । मेरी दृष्टि बदल गई है या यहाँ सब बदल गया है। यहाँ मुझे श्याम ही श्याम नजर आता है । मेरा व्यवहार अब तक जो राग द्वेष से प्रेरित होकर होता था वह सब छूट गया । न राग रहा न द्वेष रहा सब से प्रेम। गुरु महाराज ने समाज बदलने को कहा नहीं । एक अन्दर प्रेरणा जगा दी । दृष्टि पैदा कर दी । मैं क्या कर रहा हूँ । बेईमानी कर रहा हूँ । किस से कर रहा हूँ ? चोरी कर रहा हूँ किस से कर रहा हूँ । सब तुम्ही तो हो । न कहना न लिखना पड़ा बस वह चीज भर दी जिसके कारण उसकी दृष्टि बदल गई और वह स्वयं देखने लगा कि मैं क्या कर रहा हूँ । बदल गया और बदलता-बदलता आज महात्मा हो गया । गुरु महाराज ने कभी नहीं कहा कि यह करो, यह न करो (Do and Dont's) गुरु महाराज की इस विलक्षण साधना का एक अनूठा इतिहास है । उन्हें उनके गुरु का यह आदेश था कि जैसे मैं तुम्हें यह ज्ञान दे रहा हूँ वैसे तुम सभी को बांटो । एक बार संयोग वश गुरु महाराज फतेहगढ़ गए और दोनों एक ही कमरे में ठहरे । कोई विशेष परिचय भी नहीं था । गुरु महाराज जानते नहीं थे कि उनके भावी गुरु महात्मा रामचन्द्रजी महाराज कोई महात्मा हैं । उन्होंने कभी गुरु महाराज से नहीं कहा ऐसे साधना करो वैसे करो । दोनों एक ही कमरे में सोते-बैठते रहे बात करते रहे । अध्यात्म विषय के बारे में चर्चा कभी हुई नहीं । लेकिन संत निर्माण करता है । एक दिन कहा डॉक्टर साहब प्रातः काल का समय है चलो घूमने चलते हैं । ले गये । एक जगह पहुँच कर कहा बैठो और मेरे मुखातिब हो जाओ । सामने बिठा दिया और बड़ी सहजता से उठाते-उठाते धुर तक ले गये और अन्त में कहा यही खुदा है यही ईश्वर है । यह प्राप्त करना है। और यह जो प्राप्त हो रहा है इसे ऐसे ही तुम्हें बाँटना है । धारणा ध्यान कराना तुम्हारा काम नहीं है । बल्कि जैसे मैंने तुमको दिया है तुम लोगों को बांटो । गुरु महाराज ने वही काम किया । बड़ी सहजता से वह चीज बाँटी कि मालूम ही नहीं पड़ता । इस साधना से हम हंसते बोलते बदल जाते हैं, एक नई चीज विश्व को दी । आज तक किसी महात्मा ने ऐसी चीज नहीं दी । सबने यही कहा ऐसा करो वैसा करो । धारणा करो, ध्यान करो कर्मकाण्ड करो । कुछ भी नहीं करना है यह कहने वाले विश्व में केवल एक महापुरुष थे । केवल कहा मुझसे मुखातिब हो जाओ । यह सब मेरा काम है । और आज हम देखते हैं उसी का परिणाम है कितने लोग जुड़ते चले जा रहे हैं । एक बार बैठ जाता है तो उस शान्ति और आनन्द की झलक देख लेता है और उत्सुकता से लग जाता है उसे स्थाई करने । मन बदल रहा है, बुद्धि बदल रही है । पूज्य पंडितजी महाराज कहते थे एक दिन वह आयेगा जब सारा विश्व ही गुरु महाराज के वट वृक्ष के नीचे शान्ति प्राप्त करेगा जिसकी परिणति हम देख रहें है । ✦✦

प्रवचन पराग–

जीवन में आदर्श की आवश्यकता

– परम भागवत परमसंत पं० मिहीलाल जी

देखा जाता है कि प्रत्येक जीवधारी अपने एक पूर्वज का अनुकरण करता हुआ आगे तेजी से बढ़ा जा रहा है । इसमें मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी, यहाँ तक कि वृक्ष और लताएँ भी एक आगामी पथिक का अनुकरण लेती हुईं आगे दौड़ रही हैं, उसी को आदर्श कहते हैं । यह एक बीती हुई वस्तु अथवा अनदेखी हुई वस्तु का नमूना है या यों कहो हमारा आदि संचालक हमें थाती (धरोहर) रूप में प्रकृति को सौंपकर आप शान्ति रूप में मुग्ध हो रहा है । अथवा प्रकृति माता ने अपना ही एक रूप उस महान शक्ति सागर के सहारे से दर्शनार्थ निर्माण कर रखा है । आदर्श सभी प्रकार का होता है और सबका अपनी रुचि के अनुसार फलदायक होता है । इसी वास्ते मालूम होता है कि हर एक प्राणी एक आदर्श के सहारे चलता है । यह उसकी इच्छा पर है कि आदर्श किसी प्रकार का अपने सामने रखे, चाहे दैवी अथवा आसुरी । अब आप विचार कर सकते हैं कि हमने कैसा आदर्श किया है और उसके सहारे हम कहाँ तक पहुँच गये हैं । जो दशा आज हमारी है उसमें हमें शान्ति, चैतन्यता और आनंद किस हद तक मिल रहा है और हम अपने ध्येय को कहाँ तक प्राप्त कर सके हैं । इसी प्रकार आसुरी सम्पत्ति वाला भी अपना विचार कर सकता है।

आदर्श सदैव उच्च और पूर्ण होना चाहिए । तब हम भी वैसे ही बन सकते हैं । स्वामी श्री विवेकानन्द जी ने लिखा है कि सभी जन आकाश को देख सकते हैं । पृथ्वी पर रेंगता हुआ कीड़ा भी उसे देख सकता है पर वह है कितनी दूर ? मन तो सब का ही चला जाता है पर इस शरीर को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में बड़ा समय लगता है । यही दशा हमारे आदर्शों की भी है । वे बहुत ऊँचे हैं, हम बहुत नीचे । पर हम जानते हैं कि हमारे आदर्श होने चाहिए । हम यह भी जानते हैं कि अभाग्यवश संसार के अधिकांश लोग बिना किसी आदर्श के अंधेरे में भटकते फिरते हैं । यदि एक आदर्श वाला पुरुष हजार गलती करता है तो मुझे विश्वास है कि बिना आदर्श बाला उससे पचास गुना करेगा । इस वास्ते अपने सामने एक आदर्श अवश्य रखना चाहिये । इस आदर्श का ही वर्णन जितना हो सके हमें सुनना चाहिए । जब तक कि वह हमारे हृदय में न समा जाय, हमारे मस्तिष्क में न भर जाय, हमारे रक्त के साथ ही न बहने लगे और हमारी नस-नस में ही जब तक उसके विचार न भिद

जावें, हमें उसे अवश्य सुनना चाहिए । हृदय जब भावनाओं से भर जाता है तो मुँह बोलता है और हृदय के भावनाओं से भर जाने पर हाथ भी काम के लिए उठते हैं ।

विचार ही हमें कार्य के लिए प्रेरित करते हैं । हृदय को उच्च से उच्च विचारों से भर लो । दिन-प्रतिदिन उन्हीं की बातें सुनो सदा उन्हीं का ध्यान करो । असफलता की चिन्ता न करो । असफलता बिल्कुल स्वाभाविक है । वह जीवन को सुन्दर बनाती है । इन असफलताओं के बिना जीवन क्या होगा? संग्राम के बिना जीवन रहने योग्य नहीं होता जीवन का कवित्व ही नष्ट हो जावेगा। संग्राम की आवश्यकताओं की चिन्ता न करो । मैंने गाय को कभी झूठ बोलते नहीं देखा, फिर भी वह पशु ही है मनुष्य नहीं । इसीलिए तुम असफलताओं और छोटी भूलों की चिन्ता न करो। अपने आदर्श का हजार बार ध्यान करो और हजार बार यदि तुम असफल होते हो तो एक बार फिर प्रयत्न करो । मनुष्य का आदर्श है वह परमात्मा को सर्वत्र देखे । यदि तुम उसे सभी वस्तुओं में नहीं देख सकते, तो पहिले उसी में देखो जो तुम्हें सबसे अधिक प्यारी हो, फिर दूसरी में । इस प्रकार आगे बढ़ते चलो । इच्छानुसार समय खर्च करो, तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी । आदर्श ही जीवन गुरु हैं और वही हमारा आदि संचालक हैं ।

जीव आत्मा का एक अंश है । उसी वास्ते उसे उतना ही ज्ञान है । तुम्हारा मन चंचल है । क्या तुम्हें ज्ञान है कि यह चंचल क्यों है ? उस अन्तर्यामी की गति इससे करोड़ों गुनी चंचल है । यदि मन सैकड़ों मील सैकिण्डों में जाता है तो वह असंख्य मील सैकिण्डों के सौंवे भाग से भी कम में पहुँचता है । यानि तुम उसकी तेजी का अनुमान भी नहीं कर सकते । वही सब विश्व का संचालन करता हुआ स्वयं चलता भी है और स्थित भी है । यह सब जो तुम देख रहे हो वह सभी में स्थित है । वह स्थिर भी है और अस्थिर भी है । वह निकट भी है और दूर भी है । वह सभी वस्तुओं का सूक्ष्म भी है और अस्तित्व भी । जो उसको सभी वस्तुओं में देखता है और सभी वस्तुओं को उसमें (आत्मा में) देखता है वह आत्मा से कभी दूर नहीं हो सकता । उसके लिए माया नहीं है । जिसने विश्व की एकता को पहिचान लिया उसके लिए कोई दु:ख हो ही नहीं सकता ।

यह सब कार्य आदर्श के रखने ही पर होता है। उस शुद्ध सच्चिदानन्द का रूप सद्गुरु में पूर्णतः आता है और उसी आदर्श (गुरु) को पाकर शिष्य पूर्ण बनने का अधिकारी होता है । जिसका आदर्श पूर्ण है, निस्सन्देह उसका अनुगामी पूर्णता को प्राप्त हो जायगा, इसमें किंचित संशय नहीं है । **ओउम् शम् ।**

✦✦

संत वचन

1. एकाग्र हुआ चित्त ही पूर्ण स्थिरता को प्राप्त होता है।
2. योगाभ्यास में लगा चित्त आत्मा में लीन हो जाता है।

सुधा-सार :-

अलग-अलग लाभ क्यों

— युग पुरुष परम संत श्री हेमेन्द्र कुमार जी

दो साधक एक साथ गुरु महाराज की चीज को चाहते हैं । दोनों निष्ठा और विश्वास के साथ साधना करते हैं । गुरु महाराज के मिशन की सेवा भी करते हैं परन्तु यह देखा गया है कि उनमें से एक पूर्ण हो जाता है दूसरा कुछ उन्नति तो करता है, शान्ति भी प्राप्त करता है परन्तु अपने ध्येय से बंचित रह जाता है । इसका कारण एक महापुरुष ने पूछने पर बताया कि गुरु के दर्शन से कुछ अंश तक तो लाभ होता है लेकिन पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए उनकी आज्ञाओं का पालन भी करना होगा । एक साधक है वह अपने दृष्टिकोण को, अपने विचारों को, अपनी इच्छाओं को गुरु के दृष्टिकोण, गुरु के विचारों तथा गुरु की इच्छाओं में विलीन कर देता है और गुरुमुख हो जाता है। वह भण्डारों में आता है तो इधर-उधर की बातों में न उलझ कर गुरु से अपने सुरति की धार मिलाये रहता है । जितने प्रेमी वहाँ आते हैं सभी को गुरुमय देखता है, गुरु के मिशन की सेवा करके प्रसन्नता अनुभव करता है । वह गुरु महाराज की सभा को मन को विश्राम देने, गुरुकृपा प्राप्त करने और शान्ति प्राप्त करने का एक मंदिर समझता है । उसकी इच्छा केवल गुरु की निष्काम भक्ति, गुरु प्रेम और गुरु कृपा प्राप्त करने के अलावा और कुछ नहीं रहती । वह अपने आपको गुरु के सुपुर्द कर देता है, गुरु उसे कबूल करते हैं, पाये तकमील के साँचे में ढालकर ध्रुव पद तक पहुँचा देते हैं ।

दूसरा साधक भी श्रद्धा और विश्वास के साथ साधना प्रारम्भ करता है तथा परोक्ष या अपरोक्ष में गुरु के मिशन की सेवा भी करता है लेकिन उसकी कमी के कारण हैं उसके विचार । वह अपने विचारों को नहीं छोड़ पाता । साधना के साथ-साथ जितने अधिक विचार पकड़ता जाता है उतनी ही कमी अधिक उसमें आती जाती है । उसका हाल उस शराबी जैसा होता है जो यह कहता है कि शराब ने उसे पकड़ रखा है यह मुझे छोड़ती नहीं । जबकि वास्तविकता यह है कि शराबी की शराब में इतनी ज्यादा आसक्ति होती है कि वह उसे छोड़ने की कोशिश ही नहीं करता।

गुरु महाराज कहा करते थे हजारों में 2-4 शिष्य ही गुरु प्रणिधान होते हैं जो गुरु चरणों में निष्काम भाव से प्रेम करते हैं और निष्ठावान होते हैं- ऐसे ही भक्त पूर्ण शिष्यत्व को प्राप्त कर पाते हैं । वह गुरु चिंतन व गुरु प्रेम से उनका आशीर्वाद पा लेते हैं । ऐसे ही गुरुमुख शिष्य तथा प्रतिभा वाले को तालीम देकर आचार्य पद प्रदान किया जाता है । इनकी अपनी कोई इच्छा नहीं रहती । वह पूर्ण रूप से गुरु मुख तथा गुरुमय होकर गुरु मिशन की सेवा करते हैं । मानवमात्र की सेवा करना उनका स्वभाव होता है ।

जिन महापुरुषों ने लाखों नर-नारियों को सतपथ पर लगाया उनका कल्याण किया उन सबकी कृपा सदैव हो रही है, इससे हम लाभ उठाये।

हम सबको भी गुरुमहाराज से प्रार्थना करनी चाहिए कि हमारी सारी इच्छायें लौकिक या परलौकिक सब समाप्त हो जायें और उसके स्थान पर आपका प्रेम हमें मिले । ✦✦

अध्यात्म में श्रद्धा का महत्व

— महात्मा श्री ओम प्रकाश विरल जी

हरिदर्शन के लिए श्रद्धा की सबसे बड़ी आवश्यकता होती है। प्रथम श्रद्धा सुनने से होती है, वह किसी संत से हो या ईश्वर से। वही श्रद्धा आगे बढ़कर उनके दर्शन को होती है और वह दर्शन देते हैं। ऐसी तीव्र श्रद्धा को कोई रोक नहीं सकता भला जो जगत पिता से मिलना चाहे, किसकी सामर्थ्य है जो उसको रोकने का साहस करे।

श्रद्धा बुद्धि से भी आगे की चीज है। यह हृदय की एक शक्ति है। मनुष्य की श्रद्धा जितनी अधिक तेज होती है, बुद्धि उसी प्रकार शुद्ध और शक्तिवान बन जाती है। श्रद्धा ही एक ऐसा यंत्र है जिसके द्वारा दूसरे मनुष्य के हृदय के सुन्दर विचार तथा ज्ञान को लिया जा सकता है। जहाँ श्रद्धा होगी वहीं विश्वास होगा। इसीलिए श्रद्धा यदि भवानी है तो भगवान शंकर विश्वास हैं। जिसके प्रति जितनी श्रद्धा बढ़ती जायेगी, उसी प्रकार उसका हृदय उसकी ओर होता जायगा। धर्म के प्रति, ईश्वर के प्रति, गुरु के प्रति जो विशेष श्रद्धा रखते हैं, उनमें धर्म का निवास हो जाता है। वही सच्चा धर्म जान सकते हैं। बिना श्रद्धा के पूजा का कोई मूल्य नहीं है। सच्चा मूल्य तो उसी श्रद्धा का है, जो अनेक कष्टों में भी घटे नहीं बल्कि उस समय और भी बढ़ती जाये। गुरु का शरीर न रहने पर भी जिनके प्रति हमें श्रद्धा है, वह चाहे अवतार हों, कोई महात्मा हों, गुरु हों, माता-पिता हों, उनके सामने तो हो ही, लेकिन न रहने पर और भी अधिक श्रद्धा रखते हैं, उनको वही लाभ मिलते रहता है जो सामने मिलता था। कारण यही है कि तुम जिसके प्रति श्रद्धा कर रहे हो, उनकी आत्मा संसार में मौजूद है। उसका नाश नहीं होता, और श्रद्धा भी सूक्ष्म तत्व है जो उन तक पहुँच जाती है। इसलिए यदि तुम्हारा प्रेम या श्रद्धा गुरु में है तो उनकी आत्मा तुम्हें पूर्ण ज्ञान देगी। स्वप्न के दर्शन भी श्रद्धा के ही कारण तो होते हैं। श्रद्धा दोनों के बीच वह बेतार का तार है जिसके द्वारा दोनों आपस में बात कर सकते हैं। इसी को विश्वास क. नाम भी दे दिया है। लेकिन श्रद्धा विश्वास से कुछ आगे है। श्रद्धा दिखलाई नहीं जा सकती, जो श्रद्धा को दिखाने का अवसर देते हैं, वह श्रद्धा ढोंग के रूप में बदल जाती है। इसलिए श्रद्धा कोई तत्व विशेष नहीं, वह तो आत्मा की एक शक्ति है।

श्रद्धा का बदला तुमको उनके प्रेम से मिलेगा। शिष्य की जितनी श्रद्धा गुरु में होगी, गुरु का उतना ही प्रेम शिष्य के लिए उमड़ने लगेगा। एक

और बात भी समझने की है। कभी-कभी शिष्य की श्रद्धा से वशीभूत हो गुरु उसे स्थूल रूप में भी दर्शन देते सुने गये हैं, उनसे बात हो सकती है। यह स्वप्न से भी आगे की बात है क्योंकि श्रद्धा में महान शक्ति है। शिष्य की श्रद्धा गुरु के रूप में उसके सामने आती है, ऐसा नहीं है कि गुरु को पता नहीं है। समर्थ गुरु को पता रहता अवश्य है वह कहें या न कहें। यह इसलिए लिखा है कि ऐसा न हो कि गुरु के शरीर में न रहने पर शिष्य कहीं अंधेरे में न आ जाय और लाभ से वंचित रहे। क्योंकि गुरु और शिष्य का साथ शरीर का ही नहीं है, आत्मा का भी है। साधना की सफलता के लिए श्रद्धा का सबसे ऊँचा स्थान है। कोई भी साधक इसके बिना आत्मा का भेद किसी प्रकार भी नहीं जान सकता।

श्रद्धा एक लगाव है जिसके बिना गुरु का ज्ञान किसी प्रकार भी शिष्य में उतर नहीं सकता। ज्यों-ज्यों श्रद्धा किसी पर बढ़ती है, वह निकट आता जाता है। अत्यन्त घनी श्रद्धा अद्वैत के रूप में आकर गुरु शिष्य दोनों को पार कर देती है। श्रद्धा आन्तरिक प्रेम की एक शक्ति है जो देखने में तो नहीं आती परन्तु अन्तर में पता दोनों को खूब रहता है। इसीलिए यह ईश्वरीय प्रेम ही की गणना में आती है। जहाँ शिष्य में गुरु के प्रति श्रद्धा होती है, वहाँ गुरु में शिष्य के प्रति प्रेम जाग्रत हो जाता है। चाहे वह कहें भी नहीं, परन्तु हृदय के तार उससे कुछ झंकृत अवश्य हो जाते हैं। ✦✦

खोया पाया

मथुरा भण्डारा-2015

दिनांक 15, 16 एवं 17 फरवरी 2015 के अवसर पर खोया पाया सामान की सूची :-

1. लेडीज पर्स व उसमें कुछ रुपये
2. लेडीज गले का एक मंगलसूत्र
3. जेन्ट्स मुफ्लर चार नग
4. गर्म टोपी पाँच नग
5. एक लेडीज गर्म स्वेटर
6. पायल अलग-अलग डिजाइन के तीन नग
7. जेन्टस पर्स (खाली)
8. चाबी के गुच्छे चार
9. चश्मे चार नग
10. कुछ रुपये गिरे हुए

जिन सत्संगी भाई बहिनों का इस लिस्ट में से कोई सामान हो उनसे निवेदन है, कि सामान का पूर्ण विवरण देते हुए पत्र द्वारा या फोन पर (0565-3290790) साधन प्रेस कार्यालय से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

व्यवस्थापक

लक्ष्य क्या है ?

– श्रीयुत् प्रभुदयाल शर्मा

केनोपनिषद् के महान् ऋषि की अनुभवी वाणी है–

'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीरः प्रत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।।'

केन खण्ड 2/5

अर्थात् इस मनुष्य शरीर में उस परब्रह्म को जान लिया तब तो बहुत कुशल है । यदि इस शरीर के रहते-रहते उसे नहीं जान पाया तो महान् विनाश है । यही सोचकर बुद्धिमान पुरुष प्राणिमात्र में उस परब्रह्म परमात्मा को समझकर इस लोक से प्रयाण करके अमर हो जाते हैं । मानव जीवन के लक्ष्य का निर्धारण तो महापुरुषों ने पहले से कर रखा है, आवश्यकता तो यह है कि हम उसे प्राप्त करने का भरसक प्रयास करते रहें । हम जहाँ भी हैं वहीं से उस परमात्मा की ओर जाने का रास्ता खुलता है- चलना ही पड़ेगा उस ओर तभी उस मंजिल तक पहुँच पायेंगे । जीवन को सफल बनाना चाहते हैं, पहुँचाने की इच्छा है, लगन है निष्ठा है, दृढ़ संकल्प है तो चल दीजिये बस । लक्ष्य तो प्रभु प्राप्ति का है परन्तु इस प्रकृति के सम्बन्ध के कारण-मनुष्य भूल जाता है और इस असार संसार में ही भटकता चला जाता है । इस प्रकार वह लक्ष्य गौण हो जाता है और संसार की प्राथमिकता जीवन में व्याप्त हो जाती है । परम भागवत् पण्डित जी महाराज इसके लिये उपाय बतलाते हैं- 'शरीर को गृहस्थी के लबादे (वस्त्रों) से ढके रहो परन्तु मन को वैराग्य के वस्त्रों से सजाते रहो । काम पूरा हो जायेगा' महान् संत विनोबा जी लिखते हैं- 'लक्ष्य तो प्रभु प्राप्ति है परन्तु व्यक्ति सांसारिक सुखों को ही लक्ष्य मानकर असली लक्ष्य को भूल जाता है अतः भटकता रहता है सदा दु:खी रहता है । बुद्धिमत्ता इसी में है और भलाई भी इसी में कि हम उस लक्ष्य पर अडिग रहें । जब लक्ष्य निश्चित हो गया तो अब यात्रा करते हैं ।' वस्तुतः जीवन एक यात्रा ही तो है, इस यात्रा में अनेकानेक बाधायें, छल, प्रवंचनायें, रुकावटें आती हैं उनको देख साधक हतोत्साहित एवं घबरा जाता है, रास्ता सूझता नहीं, किधर जायें, किधर न जायें, इस प्रकार मनुष्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ अवस्था में कुछ भी निर्णय करने की स्थिति में नहीं रहता है । मीरा स्वयं कहती हैं।

'गली तो चारों बंद हुईं हरि से मिलूँ मैं कैसे जाय ।
सोच सोच पग धरूँ जतन ते बार बार डिग जाय ।।'

अंत में वह यही कहती हैं कि मैं भटकी रही पर मेरे गुरु ने पार लगा दिया, मीरा के प्रभु गिरिधर नागर सतगुरु दई मिलाय ।

परमभागवत पण्डित जी महाराज की वाणी

में यही संकेत तो हैं- 'जीवन में किसी साथी की तलाश अवश्य कर लेना, जब सच्चा साथी मिल जाय तो उस पर श्रद्धा और विश्वास लाना। उसकी आज्ञा का पूर्ण पालन करना,

.... सचमुच तुम छले गये हो, कहीं विद्या ने कहीं दम्भ ने, कहीं पाखण्ड ने, कहीं शास्त्र और कहीं राजनीति ने तुम्हें छल लिया है........ इस कारण तुम्हारे पास कोई साधन उसको पूर्णतः जानने को नहीं है इसलिये जो संत तेरे अज्ञान का पर्दा हटा विश्व के कण कण में उस आदि शक्ति का दर्शन कराते हैं, तेरी मुक्ति का मंगल द्वार खोलते हैं और यह सब अहैतुकी कृपा वश, अंधेर है कि उनके पास जाने के लिये समय का और धन का अभाव बतलाता है,जीवन भी उसकी कीमत नहीं है फिर तू धन और समय की बात करता है। लगा दे दाँव पर अपना सर्वस्व, प्राप्त करले उन चरणों का आशीर्वाद बहार के ये दिन कहीं यूँ ही न बीत जायें। महान् संत कबीर साहब अपने एक पद में अपनी दशा और गुरु की अहैतुकी कृपा का वर्णन करते नहीं भूलते हैं।

'कहत कबीर सुनो भई साधो हम तो रहे मझधर।
रामानंद मिल्या गुरु पूरा कर दियो बेड़ो पार।।'

इस मार्ग में आगे बढ़ने में विघ्न बाधायें रुकावटें आती ही हैं परन्तु जो ऐसे मार्ग दर्शक (गुरु) के चरण चिह्नों को देखते हुये आगे बढ़ते चले गये उनके लिये मंजिल फिर दूर कहाँ? एक शायर के बोल हैं-

'मंजिल से हमें काम नहीं ऐ काफिले वालो।
हम तो साहिबे मंजिल के कदम देख रहे हैं।।'

उस लक्ष्य की प्राप्ति में गुरु सानिध्य, गुरु कृपा की तो महती आवश्यकता है ही परन्तु कभी परिवारीजन भी सहायक होते- देखे जाते हैं। ध्रुव की माँ ने पुत्र से यही तो कहा कि तू इस अपमान से दुःखी न हो, उस परमात्मा की शरण में जा। लक्ष्मण जी की माँ महारानी सुमित्रा का अपने पुत्र को सिखावन देखें-

'तात तुम्हारि मातु वैदेही।
पिता रामु सब भाँति सनेही।।
अवध तहाँ जहँ राम निवासु।
तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासु।।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं।
अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।।
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं।
सेइअहिं सकल प्रान की नाईं।।
अस जियँ जानि संग बन जाहू।
लेहू तात जग जीवन लाहू।।'

रा.च.मा.2/73/2-5-8

आद्य गुरु शंकराचार्य जी की माँ अपने इकलौते पुत्र को सन्यास लेने की आज्ञा प्रदान करती हैं। तुलसीदास जी की पत्नी अपने पति को मनुष्य जीवन के लक्ष्य की ओर प्रेरित करती हैं। ये सब मार्ग दर्शक गुरु रूप में ही तो थे। भगवान राम वन में जाते हैं बहुत बाधायें, रुकावटें भी आती हैं परन्तु राम से मिलने वाले को कठिन नहीं हुआ, भगवान् के लिये मार्ग कठिन रहा हो परन्तु भक्त के लिये अत्यन्त सुगम हुआ। भक्त शिरोमणि भरत जी भगवान के दर्शनार्थ चित्रकूट के लिये चल देते हैं- नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया, प्रेमु नेमु ब्रतु धरम अमाया। भक्त की ऐसी दयनीय दशा देख देव पुष्प वर्षा करते हैं एवं

प्रकृति भी अपना स्वरूप बदल देती है-

देखि दसा सुर बरसहिं फूला ।
भइ मृदु महि मंगल मूला ।।
किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात ।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात ।।

रा.च.मा.2/216

इतना ही नहीं भरत जैसे भक्त के दर्शन मात्र से मार्ग एवं पथिक जड़ चेतन स्थावर जंगम सभी कृतार्थ हो गये-भव रोग मिट गये:-

'जड़ चेतन मग जीव घनेरे ।
जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ।
ते सब भए परम पद जोगू ।
भरत दरस मेटा भव रोगू ।।'

'गुरु बिनु कौन बतावे बाट' वस्तुतः गुरु ही मार्ग बतलाते हैं ? अपने ज्ञानरूपी प्रकाश से साधक का मार्ग प्रशस्त करते रहते हैं परन्तु कब ? परम समर्थ गुरु महाराज की अमोघ वाणी के संकेत देखें- 'सारे अहंकारों को त्याग भोले भाले भाव लेकर जिज्ञासु बन उसके समक्ष पहुँचो तब उसका फल तुम्हें प्राप्त होगा । गुरु मुख बनो- 'गुरु फेरे तैसे फिरै त्यागे अपनी खोट'। इस मार्ग में अनुमान प्रमाण काम नहीं देते, तर्क का स्थान नहीं है श्रद्धा और विश्वास ले आगे बढ़ो । आज्ञा पालन का भरसक प्रयत्न करते चलो, तुम्हारी सब विघ्न बधाओं को वह हटायेगा और तुम्हें धुर तक पहुँचायेगा यह उसका कर्त्तव्य है । वस्तुतः जीव और परमात्मा में दूरी है ही नहीं वह तो अंग संग लगा हुआ ही है । एक पाश्चात्य विचारक लिखते हैं- Distance is nothing it is only the first step that is difficult यह दूरी मानी हुई है, गुरु उस दूरी का भ्रम मिटा देते हैं, उसके अपने विचारों की ही वह दूसरी थी । परम भागवत यही तो कहा करते थे:-

'दीदार तो हो जाता कोई बात न थी, अपने ही विचार दीवार बन गये ।' गुरु उस दीवार को ढहा देते हैं फिर तो वह समक्ष ही दिखने लगता है।

मनुष्य को किसी ने बाँधा नहीं है बल्कि अपने भ्रम एवं अज्ञानवश स्वयं अपने बन्धन निर्मित कर लेता है जिस प्रकार मकड़ी अपना जाला स्वयं निर्मित कर उसमें फँस जाती है । उसी प्रकार मनुष्य कल्पित बन्धनों में फँस के रह गया है । इन बन्धनों से छुटकारा पाने का एक ही मार्ग है- अपने स्वरूप का ज्ञान । अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा ही मुमुक्षता है । इसी से मुक्ति प्राप्त होती है अन्य कोई उपाय नहीं है । यह मुमुक्षता की स्थिति जीवन में कब आ पाती है ? उसके लिये सर्व प्रथम हमें ऐसे महापुरुष, सद्गुरु के आश्रित होना होगा तभी विवेक अन्तर में जाग्रत होगा । विवेक के द्वारा ही अन्तर में व्याप्त वासनाओं का क्षय होता है । जो विष कहलाता है वह विष नहीं है अपितु विषयों की वासना ही विष है । यह विवेक ही सांसारिक भागों से वैराग्य उत्पन्न करता है । इस वैराग्य की स्थिति से ही अन्तर में शम (मन का वश में होना) । इस शम के पश्चात् दम आता है उससे इन्द्रियाँ नियंत्रण में आने लगती हैं फिर तितिक्षा आती है, सहनशक्ति बढ़ने लगती है । सहनशाक्ति के पश्चात् जीवन में उपरति की स्थिति प्राप्त होने लगती है, नाना प्रकार के भोगों से कुछ अरुचि सी होने लग जाती है । तत्पश्चात् मन में श्रद्धा का

भाव प्रस्फुटित होने लग जाता है, श्रद्धा से ही परमात्मा, में उनकी प्राप्ति में, प्राप्ति के साधन बतलाने वाले संतों के वचनों में विश्वास होने लग जाता है । और समस्त शंकाओं का समाधान अनायास हो जाता है, शंकायें निर्मूल हो जाती हैं । इस प्रकार षट् सम्पत्तियों की प्राप्ति होती है, इन सबकी प्राप्ति से आत्मसाक्षात्कार की, परमात्मा को प्राप्त करने की लालसा अपने पूर्ण वेग के साथ जाग्रत होती है यही मुमुक्षता है । इस प्रकार सद्गुरु के सानिध्य में साधक की साधना तब तक चलती रहती है जब तक कि वह अपने अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त नहीं कर लेता है । 'साधन सिद्धि राम पग नेहू' जीवन राम मय ही हो जाता है ।

ऐसी स्थिति साधक के जीवन में कब आ पाती है ? उसी के लिये एक सूफी संत शाह अबीदुल्लाह साहब कहते हैं कि शिष्य को चाहिये कि अपने और गुरु के दिल को मिलाकर एक कर ले और ऐसा एकत्व कर कि किसी साँस में जुदाई न हो । यहाँ तक कि तेरी मुरादें, वासनायें गुरु की वासनायें बन जायें। इससे तुझे ऐसी वस्तु मिलेगी कि जिससे आगे और कुछ नहीं ।

'जाय कुन दर अन्द रूहा रव्वेश रा ।
दूरकुन अवराक गैर अन्देश रा ।।'

अर्थात् भगवान् के किसी भक्त को अपने हृदय मंदिर में बैठाल ले, इसके सिवाय जितनी भी सूरतें तेरे दिल में हों उन्हें निकाल बाहर करदे। ऐसी ही गुरु के प्रति समर्पण की भावना परम भागवत पण्डित जी महाराज के जीवन में देखते ही बनती है–

'जब यह तन प्रभु कौ करि देवै ।
तब ही या में आनि बसें वह अपनौ ही करि लेवै ।
जो कछु कर्म करै इन्द्रिन सों, उन ही के हित् होवै।।
तू क्यों मलिन रहत मनमूरख क्यों नहिं निरमल सेवै।
अर्पन करि तन मन तू अपनौ, वह आपनौ करि लैवे ।।'

हे कृपालु गुरो । हम सभी आपके आश्रित जन इस भव सागर के अथाह जल में डूबते चले जा रहे हैं। अब तो '**बाँह पकरि गहि लीजै**' बस यही प्रार्थना है अरदास है ।

✦✦

आवश्यक सूचना

वर्ष 2015 के अगस्त माह का विशेषांक 'योग विज्ञान' के नाम से प्रकाशित होगा। जो प्रेमीजन इस विशेषांक के लिए अपने लेख भेजना चाहें उनसे निवेदन है कि लेख साधन कार्यालय मथुरा के पते पर या श्री रुद्र प्रसाद मिश्र जी के भिलाई पते पर 15 जून 2015 तक अवश्य भेज दें। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखें हो।

– सम्पादक

अभिलाषा

— श्री रामेश्वर पाठक

जेठ दुपहरी सा तपता मन फिर सावन बन जाए ।
जीवन नभ के श्याम क्षितिज पर इन्द्रधनुष उग आए ।

जग में तृष्णा की ज्वाला की लपटें धधक रही हैं ।
प्राणों में भोगों की चाहत पल-पल दहक रही है ।
ऐसे में संतोषी पुरवा चंदन सी बह जाए ।
जेठ दुपहरी सा तपता मन फिर सावन बन जाए ।।

घोर तिमिर में मचा कोलाहल सब सुख पा जाने को ।
लौ में छल है पंख जलेंगे समझ न परवाने को ।
ऐसे में हो ज्ञान श्रेयस का ज्योति सुनहरी छाये ।
जेठ दुपहरी सा तपता मन फिर सावन बन जाए ।।

पृथ्वी तो माता है सबकी जननी पोषणकारी ।
मोहित पुत्र दनुज बन उसको करते हैं दुखियारी ।
अन्धे मन में सत्य खिले तो धरती फिर मुस्काए ।
जेठ दुपहरी सा तपता मन फिर सावन हो जाए ।।

जीवन को होना था नंदन पर अरण्य उग आया ।
मधुमय राग वसंत के उर-अन्तर में क्रन्दन छाया ।
'रामाश्रम' रवि-मंडल में जग ज्योतिर्मय हो जाए ।
जेठ दुपहरी सा तपता मन फिर सावन हो जाए ।
जीवन नभ के श्याम क्षितिज पर इन्द्र धनुष उग आए । ✦✦

जाग मुसाफिर

— पूज्या श्रीमती आभा कुलश्रेष्ठ

ईश्वर के अस्तित्व को समझने की प्रेरंणा मानव को प्रकृति से मिली जब उसने बुद्धि का प्रयोग करना सीखा । इस ब्रह्माण्ड के विषय में मनुष्य जितना सोचता है उतना ही उलझता चला जाता है । यद्यपि वह जानता है कोई सत्ता है जो समस्त ब्रह्माण्ड को, संसार को परिचालित कर रही है ।

जन्म-मरण आज भी मानव के लिये रहस्य बने हुये हैं यद्यपि गुरु और ज्ञानियों ने अनेक जिज्ञासाओं को शान्त किया है । ईश्वरीय बातें बहुत गूढ़ होती हैं । उनमें से एक यह है कि मनुष्य जीवन अनमोल इसलिये है कि इस योनि में ही जीव आत्मोद्वार कर सकता है अन्यथा कई जन्मों तक जन्म मरण के बंधनों में फंसना पड़ेगा । मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है लेकिन मनुष्य सांसारिक कार्यों में रम समय नष्ट करता है । जब तक शरीर कार्यशील है आत्मोद्वार का प्रयत्न कर लेना चाहिये अन्यथा अंत समय पछताने का क्या लाभ ?

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जो जीवन के उद्देश्य बतलाये गये हैं उनको गहराई से समझना आवश्यक है । धर्म का तात्पर्य यहाँ केवल पूजा पाठ दान पुण्य से ही नहीं है वरन् इसका एक अर्थ कर्त्तव्य भी है । भाग्य वश जो कर्म हमें इस संसार में करने को मिले हैं उन्हें धर्म सम्मत कैसे निभाया जाये ये जानना आवश्यक है ।

पंचविकारों से मुक्त आत्मा ही मोक्ष की असली हकदार है । ये विकार हैं-काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार । ये विकार स्वाभाविक रूप से मनुष्य में विद्यमान होते हैं। ये भी एक विडम्बना है कि मनुष्य को इन्हीं से बचना भी है। इसीलिये बालकों को सुसंस्कारी बनाने की शिक्षा अति आवश्यक है । गुरु के पवित्र सानिध्य से भी पंच विकारों से मुक्ति का मार्ग मिलता है ।

मन एक चंचल बालक के समान है । जैसे एक माता अपने बालक की गलत बातों को न मानकर उसे डाँट फटकार कर वश में रखती है उसी प्रकार का बर्ताव व्यक्ति का अपनी इन्द्रियों के प्रति होना चाहिये । अपनी गलत व सही इच्छाओं में अंतर समझना आवश्यक है । मधुमेह से ग्रसित व्यक्ति का मिठाई खाने की इच्छा न करना ही हितकर है ।

क्रोध को पागलपन की संज्ञा दी गई है । क्रोध ने न जाने कितने व्यक्तियों को अपराधी बनाया है । अपने ही बन्धु-बाँधवों, माता-पिता व बच्चों तक की हत्या व्यक्ति क्रोध के वशीभूत हो कर सकता है इसके अनेक उदाहरण समाज में मिल जायेंगे । मन से उत्पन्न इस विकार को शान्त करने के लिये योग, प्राणायाम का सहारा लेना चाहिये । चित्त को शान्त कर लोभ लालच

से दूर रहा जा सकता है वास्तव में स्वयं राजा बन मन रूपी प्रजा पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है । संसार की निस्सारता व परिवर्तन शीलता का ज्ञान मोह से दूर रहना सिखाता है। कभी-कभी संसार जैसा दिखता है वैसा होता नहीं है और कभी जैसा होता है वैसा प्रतीत नहीं होता । मोह भंग होने पर ही निस्सारता समझ में आती है ।

अहंकार की भावना औरों से अलग कुछ उपलब्धियों के कारण उत्पन्न हो सकती है । गुरु और ईश्वर के समक्ष स्वयं को समर्पित व नतमस्तक कर देना वाला कभी भी अहंकारी नहीं हो सकता । ईश्वर सर्वशाक्तिमान है वही कर्त्ता है मैं तो निमित्त मात्र हूँ, ऐसा सोचने वाला व्यक्ति अहंकारी नहीं हो सकता ।

कभी-कभी शक्तियाँ हमें परीक्षा में भी डालती हैं जिसे आजमाइश भी कहते हैं। विकारों से मुक्त रहित आत्मा परीक्षाओं में खरी उतरती हैं । ईसाई धर्म की एक प्रार्थना में कहा गया है- हमें परीक्षा में न डाल बल्कि बुराई से बचा ।'' इन परीक्षाओं में खरा उतरने के लिये सतत: चिन्तन, मनन साधना तथा गुरु आज्ञाओं के पालन की आवश्यकता है । संसार की वास्तविकता का ज्ञान होने पर आत्मोद्धार का महत्व समझ में आता है मन स्वत: ही व्यर्थ के कार्यों से दूर रह संसार को साक्षी भाव से देखने लगता है उसमें रम कर उसे ही सत्य समझने की भूल नहीं करता।

अज्ञानी को ये मायावी संसार सत्य प्रतीत होता है जैसे छोटे बच्चों को लगता है । वास्तविकता ये है कि मृत्योपरांत बन्धु-बाँधवों, कुटुम्बियों का ज्ञान ही नहीं रहता । यहाँ तक कि शरीर भी साथ छोड़ देता है । अपने कर्मों के साथ केवल आत्मा रह जाती है । ऐसा नहीं है कि ये बातें नयी हैं और कोई जानता नहीं परन्तु मनुष्य संसार में रम कर भूलने लगता है । इसलिये गुरु को बार-बार इन्हें बताने की आवश्यकता पड़ती है। पुस्तकों में लिख कर वे ज्ञान के भंडार को छोड़ जाते हैं ताकि उनका अध्ययन करते रहें, भूले नहीं । गुरु सानिध्य, धर्म चर्चा तथा आत्म मंथन और अच्छी पुस्तकें आत्मा का भोजन हैं जो स्वभावत: सुख, शान्ति व पवित्रता को धारण करना चाहती है ।

आत्मोद्धार के लिये मिले इस मानव तन को इसी में लगा देने में हमारा हित है यदि विलम्ब की स्थिति बन रही है तो इसे भारी नुकसान समझना चाहिये क्योंकि मृत्यु कभी भी दस्तक दे सकती है अवसर प्राप्त होने पर भी यदि वंचित रह जाये तो ये हमारे हित में न होगा । ✦✦

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों का सत्संग कार्यक्रम/भण्डारा

1. उझानी :

दिनांक	:	13 (सुबह से), 14 एवं 15 जून 2015
सत्संग स्थल	:	सत्संग भवन, शान्ती देवी, जूनियर हाई स्कूल किला खेड़ा
सम्पर्क सूत्र	:	श्री अखिलेश वशिष्ठ मो. 9927363842

परम पूज्या छोटी भाभी माँ के अवतरण पर्व, 3 मार्च 2015 पर

— श्री कुलरत्न

ग़मे दुनियां की सर पर धूप जिस दम चिलचिलाती है,
तो दामन अपना फैलाये तुम्हारी याद आती है।

हे माँ, जब सांसारिक दु:ख अपनी अधिकता और प्रबल बेग से आक्रमण कर तेज धूप के मानिन्द शरीर और हृदय को दग्ध करने लगते हैं, तथा हम पुरुषार्थ आधारित सारे प्रत्यन, उपाय, उपक्रम के पश्चात भी उनसे त्राण नहीं पाते, तब हृदय अधीर हो जाता है, निराशा के बादल घेरने लगते हैं। अज्ञानवश खुद को अकेलेपन की हताशा से घिरा पाते हैं, तब थक-हारकर याद आता है कि "तुम तजि और कौन पे जाऊँ, जाके दिए अघाऊँ..... ।" और ऐसी अवस्था होने पर आपकी याद आती है. तब पुन: स्मरण होता है कि आपकी वात्सल्यमयी दया रूपी आँचल की छाँव अहर्निश हमारे सिर पर विराज रही है। हम ही हैं जो आपको भूल कर नाहक कष्ट का, दु:खों का पहाड़ अपने सिर पर लादे हुए हैं।

प्रत्येक वर्ष की भाँति आपके पावन अवतरण पर्व पर, आज के दिन जहाँ आपके अनगिनत आध्यात्मिक पुत्र-पुत्रियाँ इस स्थान पर बैठकर आपकी उपस्थिति में आपका जन्मदिन मनाते थे, वहीं आज हम सब उसे आपके जयंती पर्व के रूप में मनाने के लिए इकट्ठा हुए हैं। इस अवसर पर मुनीर नियाजी की ये पंक्तियाँ निवेदन करना समीचीन प्रतीत होता है कि -

तेरा होना जरूरी था, न होना भी जरूरी था,
किसी की याद का हस्ती में मिलना भी जरूरी था।
हमेशा एक ही आलम में होना हो नहीं सकता,
मुसल्सल का कहीं आकर बदलना भी जरूरी था।।

हे माँ! आपका स्थूल रूप में शरीर धारण कर इस धरा धाम पर अवतरित होना इसलिए आवश्यक था ताकि जनसाधारण अपनी स्थूल बुद्धि के सहयोग से आपके सान्निध्य से मिलने वाले आनन्द को जान सके, गुरु महाराज की अधीश्वरी शक्ति द्वारा बताए मार्ग पर चल सके और गुरु शक्ति को माँ के रूप में देख, जान, समझकर संसार व अध्यात्म में अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक बोध कर पाए। आपने यह कार्य गुरुमहाराज की साधना के माध्यम से किया, जिसे द्रष्टा साधन भी कहा गया है। जिसके आरम्भ में साधक अपने गुरु के स्थूल रूप को ही देखता है। उसके बाद उनके सूक्ष्म रूप को देखने में सक्षम होता जाता है। उससे और आगे तृतीय स्तर पर अपने गुरु की सर्वव्यापकता देखता है। सबमें उसी रूप को देखता है और पूर्णता के स्तर पर द्रष्टा और दृश्य एकमेव होकर लयता को प्राप्त होते हैं। द्वैत समाप्त हो जाता है। तू और मैं एक हो जाते हैं। समर्थ गुरुमहाराज के शब्दों में फनाफिल शेख से

फनाफिल्लाह की अवस्था आती है। तेरा न होना यानी स्थूल रूप का आँखों से ओझल हो जाना इसलिए आवश्यक था कि यह जाँच हो सके कि अभी तक हम कहीं गुरु के स्थूल रूप, उसकी बाह्य मोहिनी छवि पर ही तो नहीं अटके हैं। अगर हम अभी भी उसी स्थूल रूप पर टिके हुए हैं तो फिर यह समझना चाहिए कि अभी साधना के प्रथम स्तर से आगे नहीं बढ़े। यही जाँचने के लिए माँ दिनांक 11.11.2014 को यकायक हमारी आँखों से ओझल हो गईं। अपने व्यक्त से अव्यक्त स्वरूप में परिवर्तित हो गईं। अपनी सांसारिक लीला का पसारा समेट कर परमात्मा के प्रकाश पुञ्ज में लय हो गईं और स्थूल दायरे से मुक्त हो यत्र-तत्र-सर्वत्र अपने अस्तित्व को विराजित कर दिया, ताकि पहले सेभी ज्यादा मदद अपनी संतानों की कर सकें।

जैसा कि परम भागवत पण्डित जी महाराज का कथन है- ''गुरु से मिलना और बात है और गुरु में मिलना और बात है।'' आपने प्रेममूर्ति परमसंत छोटे भैया की सहभागिनी होकर उनके साथ भारतवर्ष और विदेश में सुदूर आयोजित होने वाले गुरुमहाराज के भंडारों में विराजकर गुरुमहाराज के प्रेम योग के व्यावहारिक स्वरूप को आम जन तक पहुँचाने में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया और परम पूज्य के परदा कर लेने के पश्चात उनके प्रेमियों में निराशा छा गई, परम पूज्य के परदा करने के बाद से पूज्य अमित भईया और डॉ. मोहित भईया देश के विभिन्न प्रदेशों में जाकर सत्संग कार्य में भाग ले रहे हैं।

आपके बड़े सुपुत्र परम पूज्य संजीव भईया जी अमेरिका में रहकर गुरु महाराज के मिशन का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। किसी की याद का हस्ती में मिलना भी जरूरी था के अनुरूप प्रेममूर्ति के प्रकाश रूप में मिलने के लिए आप इस नश्वर शरीर को त्याग ससीम से असीम में परिवर्तित हो गई। यह संसार प्रकृति द्वारा निर्मित होने के कारण परिवर्तनशील है। यहां हर क्षण बदलाव होता रहता है। कोई भी चीज एक जैसी अवस्था में नहीं रहती। संसार में रहकर यहां के नियमों की पालना सभी को करनी होती है। इस सिद्धांत के अनुसार भी स्वरूप परिवर्तन अनिवार्य था, सो हुआ।

सबको है तेरे जलव-ए-रंगों की जस्तजू।
ये सोचता नहीं कोई ताव-ए-नजर भी है।।

हे माँ! हम सभी आपके प्रेम और मनोहर सौंदर्य के दीदार को व्याकुल हैं, लेकिन यह कोई नहीं सोचता कि आपके इस वर्तमान स्वरूप को देखने की योग्यता उसमें है भी या नहीं। हमारे स्थूल नेत्र आपके स्थूल शरीर को देखने में ही समर्थ हो सकते हैं। वह दृष्टि जिससे अब भी हम आपकी रूप माधुरी को देख सकें, आप ही के द्वारा प्रदान की जाती है। शास्त्र बतलाते हैं कि आप तो अनादि काल से हैं। आपकी सत्ता सदैव विद्यमान रहती है, यहां तक कि प्रलयकाल में भी। आप सदैव हैं, आज भी हैं और आगे भी अनादि काल तक आप की लीला का ही पसारा है। हमें आधिदैविक, आधिदैहिक, आधिभौतिक समस्त प्रकार के कष्टों की धूप से बचाने के लिए आपके आँचल की छत्र छाया सदैव सभी पर रहेगी। पर आपसे प्रार्थना यही है कि आप वह दृष्टि भी प्रदान करें जिससे हम आपके वर्तमान स्वरूप को देख सकें और आपकी सर्वव्यापकता को महसूस कर सकें। आपके सान्निध्य में गुरु महाराज के बताए मार्ग पर पहले की तरह भी चलते रहें। हे माँ सब पर दया करें। ✦✦

गुणों में रंगा हमारा जीवन

— श्री उदय नारायण सिंह

सत् रज और तम ये तीनों गुण माया से उत्पन्न हैं। माया ने इन्हीं तीनों गुणों की वेणियों में सारे जीवों को कैद कर रखा है। सतोगुण ज्ञानाभिमान से बाँधता है तो रजोगुण आसक्ति, लोभ और कर्त्तापालन के अभिमान से बाँधता है और तमोगुण आलस्य और प्रमाद से बाँधता है।

गीता कहती है कि गुण ही संसार को चला रहे हैं। सृष्टि का निर्माण, ठहराव व विनाश सब ही गुणों के द्वारा हो रहा है। रजोगुणी ब्रह्मा निर्माण करते हैं, सतोगुणी विष्णु पालन करते हैं और तमोगुणी शंकर इसका संहार करते हैं। जीव कर्त्ता नहीं है बल्कि वह गुणों के अधीन कार्य करने को बाध्य है। सभीगुण हर समय सबमें विद्यमान रहते हैं, मगर जिस समय जिस गुण की प्रधानता रहती है, व्यक्ति वैसे ही कर्म में प्रवृत्त हो जाता है। गुणों के प्रभाव से एक ही आदमी कभी अच्छा सोचता और करता है, तो कभी उसके उलट सोचने और करने लगता है। हमारे जीवन का हर क्षेत्र चाहे वह योग साधना हो, घर-गृहस्थी हो या रहन-सहन इन गुणों के रंग में रंगा है। कहा गया है कि धरती, आकाश व स्वर्ग में कहीं भी कोई ऐसा नहीं है जिसका दामन इस रंग में रंगा न हो।

संसार में कार्य करने वाले लोग तीन तरह के बतलाये जाते हैं- सात्विक कर्त्ता, राजसी कर्त्ता और तामसी कर्त्ता। जिस कर्त्ता में कर्त्तापन का अभिमान नहीं है, फल के प्रति आसक्ति नहीं है, निर्विकार अन्त:करण वाला है, सिद्धि और असिद्धि में समान भाववाला है, उत्साह से भरपूर और धैर्यवान है, उसे सात्विकी कर्त्ता कहते हैं। उनके द्वारा होने वाले कर्म सात्विक कर्म कहलाते हैं। जिनमें कर्त्तापन का अभिमान है, फल के प्रति आसक्ति है, राग-द्वेष और लोभ से ग्रस्त हैं, मलीन हृदय और हर्ष, शोकादि द्वन्द्व में जीने मरने वाले हैं, वे राजसी कर्त्ता कहे जाते हैं और उनके द्वारा होने वाले कर्म राजसी कर्म कहे जाते हैं और अकुशल घमण्डी, धूर्त, दूसरों की आजीविका नष्ट करने वाले, आलसी और दीर्घ सूत्री लोग तामसी कर्त्ता कहलाते हैं। इनके कार्य तामसी कार्य कहे जाते हैं।

बुद्धि को भी तीन तरह का बतलाया गया है। जिस बुद्धि के द्वारा कार्य और अकार्य का, बंधन और मुक्ति का तथा प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाये, वह बुद्धि सात्विकी कही जाती है। क्या करना ठीक है, क्या करना ठीक नहीं है, संसार का मार्ग क्या है, परमार्थ का मार्ग क्या है, इसके द्वारा ठीक ज्ञान होता है। और जिस बुद्धि के द्वारा धर्म और अधर्म का, कार्य और अकार्य का ठीक-ठीक ज्ञान न हो सके,

जिसमें प्रकाश के साथ अंधकार भी रहे, उसे राजसी बुद्धि कहते हैं। जो होगा देखा जायेगा ऐसा सोच कर कर्त्ता अभिमान पूर्वक कार्य करता जाता है। और जहाँ पूर्ण अज्ञान है, अधर्म को ही धर्म मानकर कार्य करने की धुन है और सभी अर्थों को अनर्थ बनाकर आगे बढ़ने का पागलपन है, वह तामसी बुद्धि कही जाती है।

इसी तरह धारणा भी तीन प्रकार की होती है। इन्द्रियों, प्राण और मन के द्वारा आदमी जो आत्म उन्नति के लिये आन्तरिक योग साधना और ध्यान करता है, ऐसी अविचल धारणा सात्विकी कही जाती है। और फल की चाहना रखकर धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति के लिये जो धारणा की जाती है, वह आसक्ति भरी धारणा राजसी कही जाती है। और जिस धारणा से आदमी के अन्दर आलस्य, प्रमाद, निद्रा, चिन्ता और विषाद की वृद्धि होती है, वह तामसी धारणा कहलाती है। जैसी धारणा होती है, वैसा ही सुख भी जीवात्मा को प्राप्त होता है। परमात्मा के भजन, ध्यान, अभ्यास के द्वारा आत्मा को सुख व आनन्द प्राप्त होता है, उसे सात्विक सुख कहते हैं? पहले तो यह मार्ग दुर्गम और विष सा कड़वा प्रतीत होता है, मगर बाद में सुखद और अमृत सा मधुर प्रतीत होता है। इन्द्रियों और विषयों के संयोग से जो दैहिक सुख प्राप्त होता है, उसे राजसी सुख कहते है। प्रारंभ में यह अमृत सा मधुर लगता है, मगर इसका अन्त बड़ा भयावह विष सा कड़वा होता है। और तीसरा तामसी सुख है जिसका न प्रारम्भ सुखदायी है न अन्त, इसमें जीवन अंधकारमय तथा अकर्मण्य बना रहता है।

इन गुणों के प्रभाव से ज्ञान का क्षेत्र भी अछूता नहीं है। ज्ञान भी तीन तरह का होता है। सभी जीवों में सदा एकरस उस अविनाशी परमात्मा को अनुभव करना तथा तदनुसार व्यवहार करना सात्विक ज्ञान कहा जाता है। राजसी ज्ञान वह है जिसमें सबमें भगवान का अस्तित्व तो मानते हैं मगर ऊँच-नीच का भेद बना रहता है। उनके लिये सबके भगवान अलग-अलग हैं इसमें राग-द्वेष और घृणा बनी रहती है। तामसी ज्ञान एकदम स्थूल ज्ञान है या अज्ञान है जो दैहिक ज्ञान तक सीमित है। यह सूक्ष्म, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी परमात्मा को मानता ही नहीं । कहता है कि यह शरीर ही भगवान है, इसी को पालो पोषो, खाओ-पीओ, मौज करो वह इस नाशवान शरीर में ही अनुरक्त और आसक्त होकर अपना अमूल्य जीवन नष्ट कर डालता है।

ऐसे यज्ञ, दान, तप भी तीन प्रकार के कहे गये हैं। जिस यज्ञ रूपी कर्म को करने में फल की चाहना नहीं रहती, जो शास्त्र सम्मत है, जिससे हृदय को शान्ति, सुख और समाधान प्राप्त होता है और जिन्हें कर्त्तव्य भाव से किया जाता है, वे सात्विक यज्ञ कहलाते हैं। और जो यज्ञ अभिमान पूर्वक नाम, यश अथवा धन कमाने के लिये, स्वर्गादि सुख लाभ के लिये किए जाते हैं, वे राजसी यज्ञ हैं और जो यज्ञ शास्त्र सम्मत नहीं हैं बिना मंत्रों और नियमों के, बिना सात्विकी श्रद्धा के, बिना मन के किया जाता है, जहाँ दान दक्षिणा भी नहीं है, वो तामसी यज्ञ कहे जाते हैं। इससे

आत्मिक शान्ति नहीं मिलती ।

जो दान देश और काल का ध्यान रखकर कर्त्तव्य भाव से योग्य पात्र को दिया जाता है, वही सात्विक दान है। जिस देश या स्थान में और जिस समय में जिस वस्तु का अभाव होता है, वही देश और समय दान के लिये उपयुक्त होता है और जो व्यक्ति अभावग्रस्त है, दु:खी है, असहाय है, वही योग्य पात्र माना जाता है। जो दान फल की इच्छा रखकर दिया जाता है अपना उपकार करने वाले को दिया जाता है, या दुखी मन से दिया जाता है, वह राजसी दान है। और जो दान देश काल का ध्यान दिये बिना, अयोग्य पात्र को, और बिना मन का, तिरस्कारपूर्वक दिया जाता है, वह तामसी दान है। ऐसे ही तप भी तीन तरह के होते हैं। तप का अर्थ है सहन करना दूसरों के लिये कष्ट सहना, परोपकार करना, सेवा करना। यह सेवा व त्याग यदि निष्काम भाव से करते हैं, श्रद्धा पूर्वक करते हैं तो वह सात्विक तप कहलाता है। और यदि यह सेवा दिखावे के लिये, ऊपरी मन से, फल की इच्छा से, आदर मान बढ़ाई के लिये कर रहे हैं तो यह राजसी तप है। और जो तन-मन को कष्ट देकर, दूसरों का अहित करने के उद्देश्य से करते हैं वह तप तामसी तप कहा जाता है। ऐसे ही भोजन के विषय में कहा गया है कि जो भोजन ताजा है, रसदार है, आयु, बुद्धि और बल तथा आरोग्य को बढ़ाने वाला है जो मधुर हो हृदय को अच्छा लगे, वह सात्विक भोजन है। ओर जो नमकीन हो, खट्टा हो, तीता हो, जलन पैदा करने वाला हो, खूब गर्म हो, रूखा हो, जो दु:ख, चिन्ता और भय बढ़ाने वाला हो, वह राजसी भोजन है। और जो बासी है, जूठा है, दुर्गन्ध युक्त है, अधपका है, रसहीन है, वह तामसी भोजन है। जैसा भोजन होता है, वैसा मन बनता है।

इस तरह हमारा सारा जीवन, सारे व्यवहार तीनों गुणों से ओत-प्रोत हैं। यहाँ सतोगुण में भी पूर्ण सुख नहीं है। तमोगुण से रजोगुण कुछ प्रकाशमय है, और रजोगुण से सतोगुण अधिक प्रकाशवाला है, मगर सभी गुण बंधन ही हैं। एक लोहे की वेणी है, तो दूसरा चांदी की और तीसरा सोने की मगर सभी बंधन ही हैं। तीनों गुणों से ऊपर एक अवस्था आती है जिसे त्रिगुणातीत अवस्था कहते हैं। इस अवस्था को प्राप्तकर जीव एकदम निर्विकार, निर्लेप एवं स्वतंत्र हो जाता है। वह माया की सीमा पार कर जाता है। उसके लिये न कुछ अच्छा रहता है, न बुरा। वह मिट्टी, पत्थर, सोने में समान भाववाला होता है। वह प्रिय, अप्रिय, स्तुति, निंदा, मान, अपमान और शत्रु, मित्र में समान भाव रखता है। वह कर्त्तापन के अभिमान से मुक्त, सहज और सरल हो जाता है। इसी अवस्था को जीवन मुक्त अवस्था भी कहते हैं। गुरु कृपा और आन्तरिक साधना से यह अवस्था सबको प्राप्त हो सकती है। पूज्य गुरुदेव का कहना है कि हम सबका लक्ष्य इस अवस्था को प्राप्त करना होना चाहिये। इसके आगे भी चढ़ना है, मगर यह एक श्रेष्ठ एवं विशेष मुकाम है।

✦✦

खुदी मिटाकर

— श्री मोहन लाल शर्मा

आँसू देकर के मुझको, की दया, दया के सागर।
हम तुम्हें मनाते फिरते, आशाओं के मोती चुनकर।।
तुमसे कहकर मन की,
मैं मन को धीर बंधाऊँ।
कोई भी तो न सुनता,
मैं किसको दरद सुनाऊँ।।
जीवन की राह न बदले, इस जग की ठोकर खाकर।
आँसू देकर के मुझको, की दया, दया के सागर।।
तेरा वियोग ही प्यारे,
रखता तुमसे मिलवाये।
मन रोता बिलख-बिलख के,
फिर भी आनन्द मनाये।।
ये कैसा खेल निराला, भाता ही खुदी मिटाकर।
आँसू देकर के मुझको, की दया, दया के सागर।।

✦✦

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्र शिकोहाबाद का भण्डारा

दिनांक	:	27 (सुबह से), 28 एवं 29 जून 2015
सत्संग स्थल	:	पालीवाल इण्टर कालेज शिकोहाबाद
सम्पर्क सूत्र	:	डॉ. त्यागवीर सिंह मो. 09927027241
		फोन : 05676-234914

प्रेरक प्रसंग

प्रेम की गंगा-यमुना बहाएँ

— संत श्री ललितप्रभ जी

हम लोग एक शहर में थे । वहाँ एक व्यक्ति ने पन्द्रह दिन के उपवास किए । उपवास के उपलक्ष्य में उसने सम्पूर्ण समाज के लिए भोज का आयोजन किया । नगर में उस समाज के जितने भी लोग थे उन सबको उसने आमंत्रित किया । सुबह-सुबह समाज के चार-पांच वरिष्ठ लोग हमारे पास आये और कहने लगे- 'महाराजश्री' आज समाज के आठ-दस हजार लोग उस व्यक्ति द्वारा आयोजित भोज में आएँगे लेकिन उसका एकमात्र सगा भाई और उसका परिवार नहीं आएगा । मैंने पूछा- 'क्यों?' वे कहने लगे- 'दोनों भाइयों में किसी बात को लेकर तनातनी हो गई थी जिसके कारण उनमें वैर-विरोध की भावना बढ़ती ही चली गई ।'

स्मरण रखें- "अगर कटुता को समय रहते मिटा लिया जाता है तो वह मिट जाती है लेकिन उसे भविष्य के लिये छोड़ दिया जाए तो समय बीतने के साथ-साथ वैर-विरोध, कटुता और वैमनस्य बढ़ते ही जाते हैं" समाज के लोगों ने मुझसे निवेदन किया- 'आप चलें उस व्यक्ति के घर और उसे समझाएँ । मैं सहमत हो गया कि अच्छा चलता हूँ । उन लोगों के साथ मैं उन महानुभाव के घर पहुँचा । वह दरबाजे पर स्वागत के लिए आया और मुझे भीतर ले गया । मैं उसके कहने के पूर्व ही आँगन में बैठ गया । मेरे बैठते ही वह भी सामने बैठ गया । मैंने कहा-'आज तो तुम्हारे लिये बहुत खुशी और सौभाग्य की बात है कि आज तुम्हारे घर में पूरे समाज का भोजन है । उसने कहा, 'नहीं महाराज, मेरे घर में नहीं है । वह मेरा भाई लगता था किन्तु अब नहीं है । उसके घर में भोजन है । मैंने कहा-'अच्छा, तुम तो आओगे न ? उसने कहा-'किसी हालत में नहीं , मर जाऊँगा तब भी नहीं । अरे, हमारे बेटे-बेटियों की शादियाँ हो गईं किन्तु मैं उसके घर नहीं गया और न वह मेरे घर आया । मैंने पूछा-'बात क्या है ?' वह कहने लगा-'अब आपसे क्या छिपाना । बीस-बाईस साल पहले उसने समाज में मेरा अपमान कर दिया था, अपशब्द कह दिये थे । फिर बात बढ़ती चली गई और हमने एक-दूसरे के घर आना-जाना और खाना-पीना सब बंद कर दिया ।'

'सगे भाई !' मैंने चुटकी लेकर कहा- 'क्या बीस-बाईस साल पुराना कैलेण्डर है आपके घर में? जरा लाइये तो । वह सकपकाया और कहने लगा-'महाराज, आप भी क्या बात करते हैं ? बीस साल पुराना कैलेण्डर घर में थोड़े ही होता

है ।' मैंने कहा- 'जब तुम दो साल पुराने कैलेण्डर को भी घर में नहीं रख सकते तो बीस साल पुरानी बात को अपने घर में या मन में क्यों रखे हुए हो ? उसे निकालो, क्योंकि यह सब तुम्हारे दिमाग का कचरा है ।' शायद नगरपालिका की कचरापेटी की सफाई रोज होती होगी लेकिन मनुष्य का दिमाग उस कचरापेटी से भी बदतर है क्योंकि उसने दिमाग में काम की बातें तो दो प्रतिशत किन्तु ऊल - जलूल इधर-उधर की बातों का संग्रह अट्ठानवें प्रतिशत कर रखा है । वैर-विरोध, वैमनस्य, प्रतिशोध की भावना वही व्यक्ति पालता है जिसने जीवन में क्षमा और प्रेम का आनन्द नहीं लिया है । जिसने अमृत का आनन्द नहीं लिया है वही समुद्र के खारे पानी को पीना चाहता है । तुम खारे पानी को पीने के आदी हो चुके हो और मीठे जल के स्वाद से वंचित हो । जलती हुई शाखा पर कोई भी पंछी अपना घोंसला नहीं बनाना चाहता है । गुस्सैल अथवा क्रोधी आदमी के पास उसका सगा भाई भी बैठना पसंद नहीं करता है ।

प्रतिशोध तो वह विष है जो मस्तिष्क की ग्रंथियों को कमजोर करता है और मन की शांति को भस्म कर देता है । अगर मनुष्य यह सोचता है कि वह वैर को वैर से, युद्ध को युद्ध से, हिंसा को हिंसा से काट देगा तो यह उसकी भूल है । वैर-विरोध और वैमनस्यता की स्याही से सना हुआ वस्त्र खून से नहीं बल्कि प्रेम, आत्मीयता, क्षमा तथा मैत्री के साबुन से साफ किया जाता है । पुराने आघातों को याद करना मानसिक दिवालियापन है, बदला लेने की भावना क्रूरता है और प्रतिशोध की सोच आत्मघात है । हर मनुष्य, हर साधक, हर आचार्य के लिए यही है सनातन संदेश । ✦✦

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों का भण्डारा

1. राँची :

दिनांक	:	22 (सुबह से), 23 एवं 24 मई 2015
सत्संग स्थल	:	पटेल मैदान, हरमू राँची
सम्पर्क सूत्र	:	श्री बी. एन. सिन्हा मो. 09430864307 फोन : 0651-2240908 श्री चन्द्रिका प्रसाद राय मो. 09471105371 श्री जे. के. कुमार मो. 09430701951

2. धनबाद

दिनांक	:	8 (सुबह से), 9 एवं 10 मई 2015
सत्संग स्थल	:	अग्रसेन भवन, दुर्गा मन्दिर रोड, तेलीपाड़ा, धनबाद
सम्पर्क सूत्र	:	श्री सिद्धेश्वर प्रसाद मो. 09431398443

साहित्य परिचय

परिविहार— प्रस्तुत पुस्तक श्री गुरुदेव के यात्रा सम्बन्धी 6 लेखों का संग्रह है । मुख्यतः उनकी तीन यात्राओं का वर्णन इस पुस्तक में आया है- (1) तपोवन यात्रा (2) बिहार यात्रा (3) राजस्थान यात्रा । जिन-जिन स्थानों पर गुरुदेव गये उनका पूर्ण वर्णन तथा उन स्थानों के पौराणिक ऐतिहासिक और आध्यात्मिक महत्व भी उन्होंने लिखे हैं और उन स्थानों से सम्बन्धित संत महात्माओं एवं फकीरों के जीवन पर भी प्रकाश डाला है । स्थान-स्थान पर श्री गुरुदेव के उपदेश एवं आध्यात्मिक रहस्यों के निर्देश भी अंकित हैं । इसे पढ़ने से अनेक प्रेरणायें भी मिलेंगी जो अध्यात्म जीवन में सहायक और पथ प्रदर्शक होंगी ।

परम भागवत पं. मिहीलाल जी — समर्थ गुरु के सम्पर्क में आकर पूज्य पण्डित जी अध्यात्म गगन के देदीप्यमान सूर्य बन चमके, एक ऐसे पुष्प बनकर खिले जिसकी सुगन्धि दिग्-दिगंत में फैली, एक ऐसे मार्ग दर्शक बनकर घूमे, जिनके पीछे जिज्ञासुओं का, भक्तों का साधकों का समाज ऐसे ही चल पड़ा जैसे महात्मा गांधी जहाँ एक पग रखते थे कोटि पग उस ओर चल पड़ते थे । वह अपने लेखों में, प्रवचनों में, अपने जीवन के प्रसंगों को ऐसे पिरो देते थे कि पता ही नहीं चलता था किसके बारे में कहा जा रहा है । ऐसे अनेक उनके प्रसंग जो कभी व्यक्तिगत रूप से कहे गये बोले गये लिखे गये तथा प्रेमियों की जानकारी में आए, उन्हीं के आधार पर परम भागवत का जीवन चरित लिखा गया है । इसे पढ़ें और अध्यात्म लाभ उठायें। ✦✦

अतीत आगत और अनन्त

प्रस्तुत पुस्तक के तीन खण्ड हैं। तीनों खण्ड एक दूसरे के पूरक हैं। पाठकों की सुविधा के लिए प्रत्येक खण्ड को तीन भागों अतीत, आगत और अनन्त में बाँटा गया है। महान गुरु के इस महान सत्संग के मूल स्वरूप को समाज के सामने रखने का इस पुस्तक के द्वारा प्रयास किया गया है जिससे सत्संग परिवार को वही लाभ मिलता रहे जिसकी गुरु महाराज ने ''आन्तरिक सत्संग'' के माध्यम से व्यवस्था की है।

महापुरुषों की दो बातों को सदा ध्यान रखना चाहिए- एक उनके आदर्श और दूसरा उनके आदेश। इस ग्रन्थ में सत्संग के पूर्व महापुरुषों के आदर्शों व आदेशों को एवं साधना के गोपनीय रहस्यों को सरल भाषा में उद्धरित किया गया है। परमार्थ पथ के साधकों के लिए यह पुस्तक अति उपयोगी साबित होगी।

समाचार इधर-उधर के :-

आसमान नीला, पानी गीला, पेड़ हरे आखिर क्यों?

पेड़ पर ढेरों पत्तियां क्यों होती हैं ?

पत्तियां पेड़ों के लिए फूडस्टोर का काम करती हैं । पत्तियों में मौजूद क्लोरोफिल सूरज के प्रकाश को ग्रहण करता है और कार्बन-डाई ऑक्साइड का इस्तेमाल कर उसे ऊर्जा में बदल देता है, जो पेड़ को पोषण देती हैं । इसलिए पेड़ को ढेर सारा पोषण पाने के लिए ढेर सारी पत्तियों की जरूरत होती है । कुछ पत्तियां जो सूख जाती हैं, पीली हो जाती हैं, ये वो पत्तियां होती हैं जो पेड़ को ऊर्जा नहीं दे पातीं ।

-एरबोरिस्ट पेड़ों का डाक्टर

हवा दिखती क्यों नहीं है ?

हवा के कण वायुमंडल में मौजूद प्रकाश यानी रोशनी की वेवलेंथ से काफी छोटे होते हैं । जब भी कोई कण प्रकाश की वेवलेंथ से छोटा होता है तो वह वस्तु अदृश्य हो जाती है । वेवलेंथ एक तरह से प्रकाश को मापने का पैमाना है ।

-जेमी गिल्मर प्लेनेटरी साइंटिस्ट

आसमान नीला क्यों होता है ?

सूरज की रोशनी जब वायुमंडल से गुजरती है तब आसमान का रंग नीला बनता है । सूरज का प्रकाश इंद्रधनुष के रंगों से बना होता है । हमें ये रंग दिखाई नहीं देते, क्योंकि जब ये सारे रंग एक साथ मिल जाते हैं तो ये सफेद दिखते हैं । जब सूरज का प्रकाश हमारे वायुमंडल में दाखिल होता है तो यह अलग-अलग दिशाओं में बिखर जाता है । इसमें सबसे ज्यादा असर नीले रंग का होता है, इसलिए आसमान नीला दिखता है ।

-डॉ. लूसीग्रीन स्पेस साइंटिस्ट

शेर क्यों दहाड़ता है ?

जैसे हम लोग एक-दूसरे से बात करने के लिए ढेर सारे शब्दों का इस्तेमाल करते हैं, उसी तरह शेर अपनी बात कहने के लिए दहाड़ता है । जब शेर तेज आवाज में दहाड़ता है तो मतलब है कि वह बाकी सभी जानवरों को ये बताना चाह रहा है कि वह जंगल का राजा है और सबको उससे डरना चाहिए । लेकिन जब वह अपने बच्चों को बुलाता है तो उसकी दहाड़ उतनी खतरनाक और डरावनी नहीं होती । अगली बार जब जू जाना तो जरा ध्यान देना कि शेर कैसे दहाड़ रहा है । हो सकता है तुम उसकी दहाड़ का मतलब समझ पाओ ।

-ढेग स्टबिंगटन जूलोजिस्ट लंदन जू

क्या सिर्फ तोता ही बात करने वाला पक्षी है?

दुनिया में और भी ऐसे पक्षी हैं । तोता सिर्फ सुने हुए शब्दों को दोहराता है । ब्रिटेन में कॉरविड नाम के पक्षी भी सुनी हुई बातों को दोहराते हैं, लेकिन इन्हें घर में नहीं पाला जाता है साउथ-ईस्ट एशिया का मीन्हा पक्षी दुनिया में सबसे अच्छी तरह मिमिक्री करने वाला पक्षी है।

-मार्क हैबन मैनेजर लंदन जू

साभार-अमर उजाला

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों का सत्संग कार्यक्रम

1. अमानग ंज (म.प्र.) :

दिनांक	:	13 (सुबह, शाम) एवं 14 (सुबह, शाम) मई 2015
सत्संग स्थल	:	हायर सेकेण्डरी स्कूल अमानगंज
सम्पर्क सूत्र	:	श्री महेश प्रसाद द्विवेदी मो. 09993278396
		श्री राम किशोर सोनी मो. 09993791717

2. बैतूल (म.प्र.):

दिनांक	:	15 (सायं से), 16 एवं 17 मई 2015
सत्संग स्थल	:	श्री राधाकृष्ण धर्मशाला, बैतूलगंज बस स्टैण्ड के पास बैतुल गंज
सम्पर्क सूत्र	:	श्री माधव महाले मो. 09300877284, 08109749169

3. मेरठ :

दिनांक	:	10 (सायं से), 11 एवं 12 जून 2015
सत्संग स्थल	:	राजवंश भवन, आर्य समाज मंदिर के पास, डी ब्लाक, शास्त्री नगर
सम्पर्क सूत्र	:	डा. जे. एस. त्यागी मो. 09358768008
	:	श्री कान्ति त्यागी मो. 09456261875

4. मुरादाबाद :

दिनांक	:	21 (सायं से), 22 एवं 23 जून 2015
सत्संग स्थल	:	गुलजारी मल की धर्मशाला, जी.एम.डी. रोड, मुरादाबाद
सम्पर्क सूत्र	:	श्री ज्ञानेन्द्र कुलश्रेष्ठ
		मो. 09760534937, 09410893978

दिवंगत आत्माओं के लिए प्रार्थना

परम पूज्य श्री गुरु महाराज से प्रार्थना है कि जनवरी एवं फरवरी 2015 माह के दौरान रामाश्रम सत्संग (मथुरा) से सम्बन्धित सभी दिवंगत आत्माओं को निजधाम में स्थान दें एवम् शोक संतप्त परिवारीजनों को धैर्य धारण करने की शक्ति प्रदान करें ।

वर्ष : 82 [अप्रैल-2015] अंक : 09

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

✳ साधन के नियम ✳

1. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना ''साधन'' का मुख्य उद्देश्य है।
2. साधन प्रत्येक मास की **20-21** तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका अगले माह की **15** तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से सम्पर्क करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।
3. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।
4. लेखों को घटाने-बढ़ाने और छापने, न छापने का अधिकार सम्पादक का रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी नहीं होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।
5. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर साफ़-साफ़ लिखना चाहिए। उत्तर के लिए जबाबी कार्ड भेजना आवश्यक है।
6. साधन का वार्षिक शुल्क रुपये **150/=** है। एक प्रति का शुल्क रुपये **16/=** है। केवल विशेषांक का शुल्क रुपये **20/=** है। भारतवर्ष से बाहर दूसरे देशों में रहने वालों के लिए साधन का वार्षिक शुल्क रुपये **1400/=** है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।
7. दस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये **1350/** है और बीस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये **2500/** है।
8. साधन का वार्षिक शुल्क साधारण मनी-आर्डर, ई. एम. ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक (जो मथुरा में देय हो) द्वारा भेज सकते हैं, जो ''साधन हिन्दी मन्थली'' के नाम **813**, डैम्पियर नगर, मथुरा-**281001** को भेजा जाये।
9. सत्संग साहित्य जो आप मंगाना चाहते हैं उसका कुल मूल्य एवं डाकखर्च कार्यालय से पता कर मनी आर्डर ई.एम.ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा भेजकर मंगाया जा सकता है।

Licence to Post without Prepayment: Licence No.-AGRA/WPP-01/2015-2017
"Registered" Postal Regd.No.MTR/28/15-17: R.N.I. No- 2358 / 57
Date of Publication:8th to 15th of every Month

साधन

ॐ

मथुरा

प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, मथुरा
प्रकाशक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, डैम्पियर नगर, मथुरा
मुद्रक : आलोक कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा

E-mail: sadhanhindimonthly@gmail.com, sadhanhindimonthly@yahoo.co.in
Website: www.sadhan.in, www.facebook.com/sadhan.ramashram
Ph.: 0565-3290790, Mob.: 09319680800